

अध्याय 3

लाला समरकान्त की जिंदगी के सारे मंसूबे धूल में मिल गए। उन्होंने कल्पना की थी कि जीवन-संध्या में अपना सर्वस्व बेटे को सौंपकर और बेटे का विवाह करके किसी एकांत में बैठकर भगवत्-भजन में विश्राम लेंगे, लेकिन मन की मन में ही रह गई। यह तो मानी हुई बात थी कि वह अंतिम सांस तक विश्राम लेने वाले प्राणी न थे। लड़के को बढ़ता देखकर उनका हौसला और बढ़ता, लेकिन कहने को हो गया। बीच में अमर कुछ ढर्रे पर आता हुआ जान पड़ता था लेकिन जब उसकी बुद्धि ही भ्रष्ट हो गई, तो अब उससे में क्या आशा की जा सकती थी अमर में और चाहे जितनी बुराइयां हों, उसके चरित्र के विषय में कोई संदेह न था पर कुसंगति में पड़कर उसने धर्म भी खोया, चरित्र भी खोया और कुल-मर्यादा भी खोई। लालाजी कुत्सित संबंध को बहुत बुरा न समझते थे। रईसों में यह प्रथा प्राचीनकाल से चली आती है। वह रईस ही क्या, जो इस तरह का खेल न खेले लेकिन धर्म को छोड़ने को तैयार हो जाना, खुले खजाने समाज की मर्यादाओं को तोड़ डालना, यह तो पागलपन है, बल्कि गधापन।

समरकान्त का व्यावहारिक जीवन उनके धार्मिक जीवन से बिल्कुल अलग था। व्यवहार और व्यापार में वह धोखा-धाड़ी, छल-प्रपंच, सब कुछ क्षम्य समझते थे। व्यापार-नीति में सन या कपास में कचरा भर देना, घी में आलू या घुइयां मिला देना, औचित्य से बाहर न था पर बिना स्नान किए वह मुंह में पानी न डालते थे। चालीस वर्षों में ऐसा शायद ही कोई दिन हुआ हो कि उन्होंने संध्या समय की आरती न ली हो और तुलसी-दल माथे पर न चढ़ाया हो। एकादशी को बराबर निर्जल व्रत रखते थे। सारांश यह कि उनका धर्म आडंबर मात्र था जिसका उनके जीवन में कोई प्रयोजन न था।

सलीम के घर से लौटकर पहला काम जो लालाजी ने किया, वह सुखदा को फटकारना था। इसके बाद नैना की बारी आई। दोनों को रूलाकर वह अपने कमरे में गए और खुद रोने लगे।

रातों-रात यह खबर सारे शहर में फैल गई- तरह-तरह की मिस्कौट होने लगी। समरकान्त दिन-भर घर से नहीं निकले। यहां तक कि आज गंगा-स्नान करने भी न गए। कई असामी रुपये लेकर आए। मुनीम तिजोरी की कुंजी मांगने गए। लालाजी ने ऐसा डांटा कि वह चुपके से बाहर निकल गया। असामी रुपये लेकर लौट गए।

खिदमतगार ने चांदी का गड़गड़ा लाकर सामने रख दिया। तंबाकू जल गया। लालाजी ने निगाली भी मुंह में न ली।

दस बजे सुखदा ने आकर कहा-आप क्या भोजन कीजिएगा-

लालाजी ने उसे कठोर आंखों से देखकर कहा-मुझे भूख नहीं है।

सुखदा चली गई। दिन-भर किसी ने कुछ न खाया।

नौ बजे रात को नैना ने आकर कहा-दादा, आरती में न जाइएगा-

लालाजी चौंके-हां-हां, जाऊंगा क्यों नहीं- तुम लोगों ने कुछ खाया कि नहीं-

नैना बोली-किसी की इच्छा ही न थी। कौन खाता-

'तो क्या उसके पीछे सारा घर प्राण देगा?'

सुखदा इसी समय तैयार होकर आ गई। बोली-जब आप ही प्राण दे रहे हैं, तो दूसरों पर बिगड़ने का आपको क्या

अधिकार है-

लालाजी चादर ओढ़कर जाते हुए बोले-मेरा क्या बिगड़ा है कि मैं प्राण दूं- यहां था, तो मुझे कौन-सा सुख देता था- मैंने तो बेटे का सुख ही नहीं जाना। तब भी जलाता था, अब भी जला रहा है। चलो, भोजन बनाओ, मैं आकर खाऊंगा। जो गया, उसे जाने दो। जो हैं उन्हीं को उस जाने वाले की कमी पूरी करनी है। मैं क्या प्राण देने लगा- मैंने पुत्र को जन्म दिया। उसका विवाह भी मैंने किया। सारी गृहस्थी मैंने बनाई। इसके चलाने का भार मुझ पर है। मुझे अब बहुत दिन जीना है। मगर मेरी समझ में यह बात नहीं आती कि इस लौंडे को यह क्या सूझी- पठानिन की पोती अप्सरा नहीं हो सकती। फिर उसके पीछे यह क्यों इतना लट्टू हो गया- उसका तो ऐसा स्वभाव न था। इसी को भगवान् की लीला कहते हैं।

ठाकुरद्वारे में लोग जमा हो गए। लाला समरकान्त को देखते कई सज्जनों ने पूछा-अमर कहीं चले गए क्या सेठजी क्या बात हुई-

लालाजी ने जैसे इस वार को काटते हुए कहा-कुछ नहीं, उसकी बहुत दिनों से घूमने-घामने की इच्छा थी, पूर्वजन्म का तपस्वी है कोई, उसका बस चले, तो मेरी सारी गृहस्थी एक दिन में लुटा दे। मुझसे यह नहीं देखा जाता। बस, यही झगड़ा है। मैंने गरीबी का मजा भी चखा है अमीरी का मजा भी चखा है। उसने अभी गरीबी का मजा नहीं चखा। साल-छः महीने उसका मजा चख लेगा, तो आंखें खुल जाएंगी। तब उसे मालूम होगा कि जनता की सेवा भी वही लोग कर सकते हैं, जिनके पास धन है। घर में भोजन का आधार न होता, तो मेंबरी भी न मिलती।

किसी को और कुछ पूछने का साहस न हुआ। मगर मूर्ख पूजारी पूछ ही बैठा-सुना, किसी जुलाहे की लड़की से फंस गए थे-

यह अकखड़ प्रश्न सुनकर लोगों ने जीभ काटकर मुंह फेर लिए। लालाजी ने पुजारी को रक्त-भरी आंखों से देखा और ऊंचे स्वर में बोले-हां फंस गए थे, तो फिर- कृष्ण भगवान् ने एक हजार रानियों के साथ नहीं भोग किया था- राजा शान्तनु ने मछुए की कन्या से नहीं भोग किया था- कौन राजा है, जिसके महल में सौ दो-सौ रानियां न हों। अगर उसने किया तो कोई नई बात नहीं की। तुम जैसों के लिए यही जवाब है। समझदारों के लिए यह जवाब है कि जिसके घर में अप्सरा-सी स्त्री हो, वह क्यों जूठी पत्तल चाटने लगा- मोहन भोग खाने वाले आदमी चबैने पर नहीं गिरते।

यह कहते हुए लालाजी प्रतिमा के सम्मुख गए पर आज उनके मन में वह श्रद्धा न थी। दुःखी आशा से ईश्वर में भक्ति रखता है, सुखी भय से। दुःखी पर जितना ही अधिक दुःख पड़े, उसकी भक्ति बढ़ती जाती है। सुखी पर दुःख पड़ता है, तो वह विद्रोह करने लगता है। वह ईश्वर को भी अपने धन के आगे झुकाना चाहता है। लालाजी का व्यथित हृदय आज सोने और रेशम से जगमगती हुई प्रतिमा में धैर्य और संतोष का संदेश न पा सका। कल तक यही प्रतिमा उन्हें बल और उत्साह प्रदान करती थी। उसी प्रतिमा से आज उनका विपद्ग्रस्त मन विद्रोह कर रहा था। उनकी भक्ति का यही पुरस्कार है- उनके स्नान और व्रत और निष्ठा का यही फल है।

वह चलने लगे तो ब्रह्मचारी बोले-लालाजी, अबकी यहां श्री वाल्मीकीय कथा का विचार है।

लालाजी ने पीछे फिरकर कहा-हां-हां, होने दो।

एक बाबू साहब ने कहा-यहां किसी में इतना सामर्थ्य नहीं है। आप ही हिम्मत करें, तो हो सकती है।

समरकान्त ने उत्साह से कहा-हां-हां, मैं उसका सारा भार लेने को तैयार हूं। भगवद् भजन से बढ़कर धन का सदुपयोग और क्या होगा-

उनका यह उत्साह देखकर लोग चकित हो गए। वह कृपण थे और किसी धर्मकार्य में अग्रसर न होते थे। लोगों ने समझा था, इससे दस-बीस रुपये ही मिल जायें, तो बहुत है। उन्हें यों बाजी मारते देखकर और लोग भी गरमाए। सेठ धानीराम ने कहा-आपसे सारा भार लेने को नहीं कहा जाता, लालाजी आप लक्ष्मी-पात्र हैं सही पर औरों को भी तो श्रद्धा है। चंदे से होने दीजिए।

समरकान्त बोले-तो और लोग आपस में चंदा कर लें। जितनी कमी रह जाएगी, वह मैं पूरी कर दूंगा।

धानीराम को भय हुआ, कहीं यह महाशय सस्ते न छूट जाएं। बोले-यह नहीं, आपको जितना लिखना हो लिख दें।

समरकान्त ने होड़ के भाव से कहा-पहले आप लिखिए।

कागज, कलम, दावात लाया गया, धानीराम ने लिखा एक सौ एक रुपये।

समरकान्त ने ब्रह्मचारीजी से पूछा-आपके अनुमान से कुल कितना खर्च होगा-

ब्रह्मचारीजी का तख्मीना एक हजार का था।

समरकान्त ने आठ सौ निन्यानवे लिख दिए। और वहां से चल दिए। सच्ची श्रद्धा की कमी को वह धन से पूरा करना चाहते थे। धर्म की क्षति जिस अनुपात से होती है, उसी अनुपात से आडंबर की वृद्धि होती है।

दो

अमरकान्त का पत्र लिए हुए नैना अंदर आई, तो सुखदा ने पूछा-किसका पत्र है-

नैना ने खत पाते ही पढ़ डाला था। बोली-भैया का।

सुखदा ने पूछा-अच्छा उनका खत है- कहां हैं-

'हरिद्वार के पास किसी गांव में हैं।'

आज पांच महीनों से दोनों में अमरकान्त की कभी चर्चा न हुई थी। मानो वह कोई घाव था, जिसको छूते दोनों ही के दिल कांपते थे। सुखदा ने फिर कुछ न पूछा। बच्चे के लिए प्राक सी रही थी। फिर सीने लगी।

नैना पत्र का जवाब लिखने लगी। इसी वक्त वह जवाब भेज देगी। आज पांच महीने में आपको मेरी सुधि आई है। जाने क्या-क्या लिखना चाहती थी- कई घंटों के बाद वह खत तैयार हुआ, जो हम पहले ही देख चुके हैं। खत लेकर वह भाभी को दिखाने गई। सुखदा ने देखने की जरूरत न समझी।

नैना ने हताश होकर पूछा-तुम्हारी तरफ से भी कुछ लिख दूं-

'नहीं, कुछ नहीं।'

'तुम्हीं अपने हाथ से लिख दो।'

'मुझे कुछ नहीं लिखना है।'

नैना रूआंसी होकर चली गई। खत डाक में भेज दिया गया।

सुखदा को अमर के नाम से भी चिढ़ है। उसके कमरे में अमर की तस्वीर थी, उसे उसने तोड़कर फेंक दिया था। अब उसके पास अमर की याद दिलाने वाली कोई चीज न थी। यहां तक की बालक से भी उसका जी हट गया था। वह अब अधिकतर नैना के पास रहता था। स्नेह के बदले वह उस पर दया करती थी पर इस पराजय ने उसे हताश नहीं किया उसका आत्माभिमान कई गुना बढ़ गया है। आत्मनिर्भर भी अब वह कहीं ज्यादा हो गई है। वह अब किसी की उपेक्षा नहीं करना चाहती। स्नेह के दबाव के सिवा और किसी दबाव से उसका मन विद्रोह करने लगता है। उसकी विलासिता मानो मान के वन में खो गई है।

लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि सकीना से उसे लेशमात्र भी द्वेष नहीं है। वह उसे भी अपनी ही तरह, बल्कि अपने से अधिक दुःखी समझती है। उसकी कितनी बदनामी हुई और अब बेचारी उस निर्दयी के नाम को रो रही है। वह सारा उन्माद जाता रहा। ऐसे छिछोरे का एतबार ही क्या- वहां कोई दूसरा शिकार फांस लिया होगा। उससे मिलने की उसे बड़ी इच्छा थी पर सोच-सोचकर रह जाती थी।

एक दिन पठानिन से मालूम हुआ कि सकीना बहुत बीमार है। उस दिन सुखदा ने उससे मिलने का निश्चय कर लिया। नैना को भी साथ ले लिया। पठानिन ने रास्ते में कहा-मेरे सामने तो उसका मुंह ही बंद हो जाएगा। मुझसे तो तभी से बोल-चाल नहीं है। मैं तुम्हें घर दिखाकर कहीं चली जाऊंगी। ऐसी अच्छी शादी हो रही थी उसने मंजूर ही न किया। मैं भी चुप हूं, देखूं कब तक उसके नाम को बैठी रहती है। मेरे जीतेजी तो लाला घर में कदम रखने न पाएंगे। हां, पीछे को नहीं कह सकती।

सुखदा ने छेड़ा-किसी दिन उनका खत आ जाय और सकीना चली जाय तो क्या करोगी-

बुढ़िया आंखें निकालकर बोली-मजाल है कि इस तरह चली जाय खून पी जाऊं।

सुखदा ने फिर छेड़ा-जब वह मुसलमान होने को कहते हैं, तब तुम्हें क्या इंकार है-

पठानिन ने कानों पर हाथ रखकर कहा-अरे बेटा जिसका जिंदगी भर नमक खाया उसका घर उजाड़कर अपना घर बनाऊं- यह शरीफों का काम नहीं है। मेरी तो समझ ही में नहीं आता, छोकरी में क्या देखकर भैया रीझ पड़े।

अपना घर दिखाकर पठानिन तो पड़ोस के घर में चली गई, दोनों युवतियों ने सकीना के द्वार की कुंडी खटखटाई। सकीना ने उठकर द्वार खोल दिया। दोनों को देखकर वह घबरा- सी गई। जैसे कहीं भागना चाहती है। कहां बैठाए, क्या सत्कार करे।

सुखदा ने कहा-तुम परेशान न हो बहन, हम इस खाट पर बैठ जाते हैं। तुम तो जैसे घुलती जाती हो। एक बेवफा मरद के चकमे में पड़कर क्या जान दे दोगी-

सकीना का पीला चेहरा शर्म से लाल हो गया। उसे ऐसा जान पड़ा कि सुखदा मुझसे जवाब तलब कर रही है-तुमने मेरा बना-बनाया घर क्यों उजाड़ दिया- इसका सकीना के पास कोई जवाब न था। वह कांड कुछ इस आकस्मिक रूप से हुआ कि वह स्वयं कुछ न समझ सकी। पहले बादल का एक टुकड़ा आकाश के एक कोने में दिखाई दिया। देखते-देखते सारा आकाश मेघाच्छन्न हो गया और ऐसे जोर की आंधी चली कि वह खुद उसमें उड़ गई। वह क्या बताए कैसे क्या हुआ- बादल के उस टुकड़े को देखकर कौन कह सकता था, आंधी आ रही है-

उसने सिर झुकाकर कहा-औरत की जिंदगी और है ही किसलिए बहनजी वह अपने दिल से लाचार है, जिससे वफा की उम्मीद करती है, वही दगा करता है। उसका क्या अख्तियार- लेकिन बेवफाओं से मुहब्बत न हो, तो मुहब्बत में मजा ही क्या रहे- शिकवा-शिकायत, रोना-धोना, बेताबी और बेकरारी यही तो मुहब्बत के मजे हैं, फिर मैं तो वफा की उम्मीद भी नहीं करती थी। मैं उस वक्त भी इतना जानती थी कि यह आंधी दो-चार घड़ी की मेहमान है लेकिन तस्कीन के लिए तो इतना ही काफी था कि जिस आदमी की मैं दिल में सबसे ज्यादा इज्जत करने लगी थी, उसने मुझे इस लायक तो समझा। मैं इस कागज की नाव पर बैठकर भी सफर को पार कर दूंगी।

सुखदा ने देखा, इस युवती का हृदय कितना निष्कपट है कुछ निराश होकर बोली- यही तो मरदों के हथकंडे हैं। पहले तो देवता बन जाएंगे, जैसे सारी शराफत इन्हीं पर खतम है, फिर तोतों की तरह आंखें फेर लेंगे।

सकीना ने ढिठाई के साथ कहा-बहन, बनने से कोई देवता नहीं हो जाता। आपकी उम्र चाहे साल-दो साल मुझसे ज्यादा हो लेकिन मैं इस मुआमले में आपसे ज्यादा तजुर्बा रखती हूं। यह घमंड से नहीं कहती, शर्म से कहती हूं। खुदा न करे, गरीब की लड़की हसीन हो। गरीबी में हुस्न बला है। वहां बड़ों का तो कहना ही क्या, छोटों की रसाई भी आसानी से हो जाती है। अम्मां बड़ी पारसा हैं, मुझे देवी समझती होंगी, किसी जवान को दरवाजे पर खड़ा नहीं होने देतीं लेकिन इस वक्त बात आ पड़ी है, तो कहना पड़ता है कि मुझे मरदों को देखने और परखने के काफी मौके मिले हैं। सभी ने मुझे दिल-बहलाव की चीज समझा, और मेरी गरीबी से अपना मतलब निकालना चाहा। अगर किसी ने मुझे इज्जत की निगाह से देखा, तो वह बाबूजी थे। मैं खुदा को गवाह करके कहती हूं कि उन्होंने मुझे एक बार भी ऐसी निगाहों से नहीं देखा और न एक कलाम भी ऐसा मुंह से निकाला, जिससे छिछोरेपन की बू आई हो। उन्होंने मुझे निकाह की दावत दी। मैंने मंजूर कर लिया। जब तक वह खुद उस दावत को रफ्तार न कर दें, मैं उसकी पाबंद हूं, चाहे मुझे उम्र भर यों ही क्यों न रहना पड़े। चार-पांच बार की मुख्तसर मुलाकातों से मुझे उन पर इतना एतबार हो गया है कि मैं उम्र भर उनके नाम पर बैठी रह सकती हूं। मैं अब पछताती हूं कि क्यों न उनके साथ चली गई। मेरे रहने से उन्हें कुछ तो आराम होता। कुछ तो उनकी खिदमत कर सकती। इसका तो मुझे यकीन है कि उन पर रंग-रूप का जादू नहीं चल सकता। हूर भी आ जाय, तो उसकी तरफ आंखें उठाकर न देखेंगे, लेकिन खिदमत और मोहब्बत का जादू उन पर बड़ी आसानी से चल सकता है। यही खौफ है। मैं आपसे सच्चे दिल से कहती हूं बहन, मेरे लिए इससे बड़ी खुशी की बात नहीं हो सकती कि आप और वह फिर मिल जायें, आपस का मनमुटाव दूर हो जाय। मैं उस हालत में और भी खुश रहूंगी। मैं उनके साथ न गई, इसका यही सबब था लेकिन बुरा न मानो तो एक बात कहूं-

वह चुप होकर सुखदा के उत्तर का इंतजार करने लगी। सुखदा ने आश्वासन दिया-तुम जितनी साफ दिली से बातें कर रही हो, उससे अब मुझे तुम्हारी कोई बात भी बुरी न मालूम होगी। शौक से कहो।

सकीना ने धन्यवाद देते हुए कहा-अब तो उनका पता मालूम हो गया है, आप एक बार उनके पास चली जायें। वह खिदमत के गुलाम हैं और खिदमत से ही आप उन्हें अपना सकती हैं।

सुखदा ने पूछा-बस, या और कुछ-

'बस, और मैं आपको क्या समझाऊंगी, आप मुझसे कहीं ज्यादा समझदार हैं।'

'उन्होंने मेरे साथ विश्वासघात किया है। मैं ऐसे कमीने आदमी की खुशामद नहीं कर सकती। अगर आज मैं किसी मरद के साथ चली जाऊं, तो तुम समझती हो, वह मुझे मनाने जाएंगे- वह शायद मेरी गर्दन काटने जायें। मैं औरत हूं,

और औरत का दिल इतना कड़ा नहीं होता लेकिन उनकी खुशामद तो मैं मरते दम तक नहीं कर सकती।'

यह कहती हुई सुखदा उठ खड़ी हुई। सकीना दिल में पछताई कि क्यों जरूरत से ज्यादा बहनापा जताकर उसने सुखदा को नाराज कर दिया। द्वार तक माफी मांगती हुई आई।

दोनों तांगे पर बैठीं, तो नैना ने कहा-तुम्हें क्रोध बहुत जल्द आ जाता है, भाभी

सुखदा ने तीक्ष्ण स्वर में कहा-तुम तो ऐसा कहोगी ही, अपने भाई की बहन हो न संसार में ऐसी कौन औरत है, जो ऐसे पति को मनाने जाएगी- हां, शायद सकीना चली जाती इसलिए कि उसे आशातीत वस्तु मिल गई है।

एक क्षण के बाद फिर बोली-मैं इससे सहानुभूति करने आई थी पर यहां से परास्त होकर जा रही हूं। इसके विश्वास ने मुझे परास्त कर दिया। इस छोकरी में वह सभी गुण हैं, जो पुरुषों को आकृष्ट करते हैं। ऐसी ही स्त्रियां पुरुषों के हृदय पर राज करती हैं। मेरे हृदय में कभी इतनी श्रद्धा न हुई। मैंने उनसे हंसकर बोलने, हास-परिहास करने और अपने रूप और यौवन के प्रदर्शन में ही अपने कर्तव्य का अंत समझ लिया। न कभी प्रेम किया, न प्रेम पाया। मैंने बरसों में जो कुछ न पाया, वह इसने घंटों में पा लिया। आज मुझे कुछ-कुछ ज्ञात हुआ कि मुझमें क्या त्रुटियां हैं- इस छोकरी ने मेरी आंखें खोल दीं।

तीन

एक महीने से ठाकुरद्वारे में कथा हो रही है। पृं मधुसुदनजी इस कला में प्रवीण हैं। उनकी कथा में श्रव्य और दृश्य, दोनों ही काव्यों का आनंद आता है। जितनी आसानी से वह जनता को हंसा सकते हैं, उतनी ही आसानी से रुला भी सकते हैं। दृष्टान्तों के तो मानो वह सफर हैं, और नाट्य में इतने कुशल हैं कि जो चरित्र दर्शाते हैं, उनकी तस्वीरें खींच देते हैं। सारा शहर उमड़ पड़ता है। रेणुकादेवी तो सांझ ही से ठाकुरद्वारे में पहुंच जाती हैं। व्यासजी और उनके भजनीक सब उन्हीं के मेहमान हैं। नैना भी मुन्ने को गोद में लेकर पहुंच जाती है। केवल सुखदा को कथा में रुचि नहीं है। वह नैना के बार-बार आग्रह करने पर भी नहीं जाती। उसका विद्रोही मन सारे संसार से प्रतिकार करने के लिए जैसे नंगी तलवार लिए खड़ा रहता है। कभी-कभी उसका मन इतना उद्विग्न हो जाता है कि समाज और धर्म के सारे बंधनों को तोड़कर फेंक दे। ऐसे आदमियों की सजा यही है कि उनकी स्त्रियां भी उन्हीं के मार्ग पर चलें। तब उनकी आंखें खुलेंगी और उन्हें ज्ञात होगा कि जलना किसे कहते हैं। एक मैं कुल-मर्यादा के नाम को रोया करूं लेकिन यह अत्याचार बहुत दिनों न चलेगा। अब कोई इस भ्रम में न रहे कि पति जो करे, उसकी स्त्री उसके पांव धोधोकर पिण्गी, उसे अपना देवता समझेगी, उसके पांव दबाएगी और वह उससे हंसकर बोलेगा, तो अपने भाग्य को धन्य मानेगी। वह दिन लद गए। इस विषय पर उसने पत्रों में कई लेख भी लिखे हैं।

आज नैना बहस कर बैठी-तुम कहती हो, पुरुष के आचार-विचार की परीक्षा कर लेनी चाहिए। क्या परीक्षा कर लेने पर धोखा नहीं होता- आए दिन तलाक क्यों होते रहते हैं-

सुखदा बोली-तो इसमें क्या बुराई है- यह तो नहीं होता कि पुरुष तो गुलछर्रे उड़ावे और स्त्री उसके नाम को रोती रहे- नैना ने जैसे रटे हुए वाक्य को दुहराया-प्रेम के अभाव में सुख कभी नहीं मिल सकता। बाहरी रोकथाम से कुछ न होगा।

सुखदा ने छेड़ा-मालूम होता है, आजकल यह विद्या सीख रही हो। अगर देख-भालकर विवाह करने में कभी-कभी

धोखा हो सकता है, तो बिना देखे-भाले करने में बराबर धोखा होता है। तलाक की प्रथा यहां हो जाने दो, फिर मालूम होगा कि हमारा जीवन कितना सुखी है।

नैना इसका कोई जवाब न दे सकी। कल व्यासजी ने पश्चिमी विवाह-प्रथा की तुलना भारतीय पति से की। वही बातें कुछ उखड़ी-सी उसे याद थीं।

बोली-तुम्हें कथा में चलना है कि नहीं, यह बताओ।

'तुम जाओ, मैं नहीं जाती।'

नैना ठाकुरद्वारे में पहुंची तो कथा आरंभ हो गई थी। आज और दिनों से ज्यादा हुजूम था। नौजवान-सभा और सेवा-पाठशाला के विद्यार्थी और अध्यापक भी आए हुए थे। मधुसूदनजी कह रहे थे-राम-रावण की कथा तो इस जीवन की, इस संसार की कथा है इसको चाहो तो सुनना पड़ेगा, न चाहो तो सुनना पड़ेगा। इससे हम-तुम बच नहीं सकते। हमारे ही अंदर राम भी हैं, रावण भी हैं, सीता भी हैं, आदि...।।

सहसा पिछली सगों में कुछ हलचल मची। ब्रह्मचारीजी कई आदमियों को हाथ पकड़-पकड़कर उठा रहे थे और जोर-जोर से गालियां दे रहे थे। हंगामा हो गया। लोग इधर-उधर से उठकर वहां जमा हो गए। कथा बंद हो गई-

समरकान्त ने पूछा-क्या बात है ब्रह्मचारीजी-

ब्रह्मचारीजी ने ब्रह्मतेज से लाल-लाल आंखें निकालकर कहा-बात क्या है, यहां लोग भगवान् की कथा सुनने आते हैं कि अपना धर्म भ्रष्ट करने आते हैं भंगी, चमार जिसे देखो घुसा चला आता है-ठाकुरजी का मंदिर न हुआ सराय हुई।

समरकान्त ने कड़ककर कहा-निकाल दो सभी को मारकर।

एक बूढ़े ने हाथ जोड़कर कहा-हम तो यहां दरवाजे पर बैठे थे सेठजी, जहां जूते रखे हैं। हम क्या ऐसे नादान हैं कि आप लोगों के बीच में जाकर बैठ जाते-

ब्रह्मचारी ने उसे एक जूता जमाते हुए कहा-तू यहां आया क्यों- यहां से वहां तक एक दरी बिछी हुई है। सब-का-सब भरभंड हुआ कि नहीं- प्रसाद है, चरणामृत है, गंगाजल है। सब मिट्टी हुआ कि नहीं- अब जाड़े-पाले में लोगों को नहाना-धोना पड़ेगा कि नहीं- हम कहते हैं तू बूढ़ा हो गया मिठुआ, मरने के दिन आ गए, पर तुझे अकल भी नहीं आई। चला है वहां से बड़ा भगत की पूंछ बनकर।

समरकान्त ने बिगड़कर कहा-और भी कभी आया था कि आज ही आया है-

मिठुआ बोला-रोज आते हैं महाराज, यहीं दरवाजे पर बैठकर भगवान् की कथा सुनते हैं।

ब्रह्मचारीजी ने माथा पीट लिया। ये दुष्ट रोज यहां आते थे रोज सबको छूते थे। इनका छुआ हुआ प्रसाद लोग रोज खाते थे इससे बढ़कर अनर्थ क्या हो सकता है- धर्म पर इससे बड़ा आघात और क्या हो सकता है- धार्मात्माओं के क्रोध का पारावार न रहा। कई आदमी जूते ले-लेकर उन गरीबों पर पिल पड़े। भगवान् के मंदिर में, भगवान् के भक्तों के हाथों, भगवान् के भक्तों पर पादुका-प्रहार होने लगा।

डॉक्टर शान्तिकुमार और उनके अध्यापक खड़े जरा देर तक यह तमाशा देखते रहे। जब जूते चलने लगे तो स्वामी आत्मानन्द अपना मोटा सोंटा लेकर ब्रह्मचारी की तरफ लपके।

डॉक्टर साहब ने देखा, घोर अनर्थ हुआ चाहता है। झपटकर आत्मानन्द के हाथों से सोटा छीन लिया।

आत्मानन्द ने खून-भरी आंखों से देखकर कहा-आप यह दृश्य देख सकते हैं, मैं नहीं देख सकता।

शान्तिकुमार ने उन्हें शांत किया और ऊंची आवाज से बोले-वाह रे ईश्वर-भक्तो वाह क्या कहना है तुम्हारी भक्ति का जो जितने जूते मारेगा, भगवान् उस पर उतने प्रसन्न होंगे। उसे चारों पदार्थ मिल जाएंगे। सीधो स्वर्ग से विमान आ जाएगा। मगर अब चाहे जितना मारो, धर्म तो नष्ट हो गया।

ब्रह्मचारी, लाला समरकान्त, सेठ धानीराम और अन्य धर्म के ठेकेदारों ने चकित होकर शान्तिकुमार की ओर देखा। जूते चलने बंद हो गए।

शान्तिकुमार इस समय कुर्ता और धोती पहने, माथे पर चंदन लगाए, गले में चादर डाले व्यास के छोटे भाई से लग रहे थे। यहां उनका वह व्यसन न था, जिस पर विधर्मी होने का आक्षेप किया जा सकता था।

डॉक्टर साहब ने फिर ललकार कहा-आप लोगों ने हाथ क्यों बंद कर लिए- लगाइए कस-कसकर और जूतों से क्या होता है- बंदूकें मंगाइए और धर्म-द्रोहियों का अंत कर डालिए। सरकार कुछ नहीं कर सकती। और तुम धर्म-द्रोहियो तुम सब-के-सब बैठ जाओ और जितने जूते खा सको, खाओ। तुम्हें इतनी खबर नहीं कि यहां सेठ महाजनों के भगवान् रहते हैं तुम्हारी इतनी मजाल कि इनके भगवान् के मंदिर में कदम रखो तुम्हारे भगवान् किसी झोंपड़े में या पेड़ तले होंगे। यह भगवान् रत्नों के आभूषण पहनते हैं। मोहनभोग-मलाई खाते हैं। चीथड़े पहनने वालों और चबैना खाने वालों की सूरत वह नहीं देखना चाहते।

ब्रह्मचारीजी परशुराम की भांति विकराल रूप दिखाकर बोले-तुम तो बाबूजी, अंधेर करते हो। सासतर में कहां लिखा है कि अंत्यजों को मंदिर में आने दिया जाए-

शान्तिकुमार ने आवेश से कहा-कहीं नहीं। शास्त्र में यह लिखा है कि घी में चर्बी मिलाकर बेचो, टेनी मारो, रिश्वतें खाओ। आंखों में धूल झोंको और जो तुमसे बलवान् हैं उनके चरण धोदोकर पीयो, चाहे वह शास्त्र को पैरों से तुकराते हों। तुम्हारे शास्त्र में यह लिखा है, तो यह करो। हमारे शास्त्र में तो यह लिखा है कि भगवान् की दृष्टि में न कोई छोटा है न बड़ा, न कोई शुद्ध और न कोई अशुद्ध। उसकी गोद सबके लिए खुली हुई है।

समरकान्त ने कई आदमियों को अंत्यजों का पक्ष लेने के लिए तैयार देखकर उन्हें शांत करने की चेष्टा करते हुए कहा-डॉक्टर साहब, तुम व्यर्थ इतना क्रोध कर रहे हो। शास्त्र में क्या लिखा है, क्या नहीं लिखा है, यह तो पंडित ही जानते हैं। हम तो जैसी प्रथा देखते हैं, वह करते हैं। इन पाजियों को सोचना चाहिए था या नहीं- इन्हें तो यहां का हाल मालूम है, कहीं बाहर से तो नहीं आए हैं-

शान्तिकुमार का खून खौल रहा था-आप लोगों ने जूते क्यों मारे-

ब्रह्मचारी ने उजड़पन से कहा-और क्या पान-फूल लेकर पूजते-

शान्तिकुमार उत्तोजित होकर बोले-अंधे भक्तों की आंखों में धूल झोंककर यह हलवे बहुत दिन खाने को न मिलेंगे महाराज, समझ गए- अब वह समय आ रहा है, जब भगवान् भी पानी से स्नान करेंगे, दूध से नहीं।

सब लोग हां-हां करते ही रहे पर शान्ति कुमार, आत्मानन्द और सेवा-पाठशाला के छात्र उठकर चल दिए। भजन-मंडली का मुखिया सेवाश्रम का ब्रजनाथ था। वह भी उनके साथ ही चला गया।

चार

उस दिन फिर कथा न हुई। कुछ लोगों ने ब्रह्मचारी ही पर आक्षेप करना शुरू किया। बैठे तो थे बेचारे एक कोने में, उन्हें उठाने की जरूरत ही क्या थी- और उठाया भी, तो नम्रता से उठाते। मार-पीट से क्या फायदा-

दूसरे दिन नियत समय पर कथा शुरू हुई पर श्रोताओं की संख्या बहुत कम हो गई थी। मधुसूदनजी ने बहुत चाहा कि रंग जमा दें पर लोग जम्हाइयां ले रहे थे और पिछली सगों में तो लोग धड़ल्ले से सो रहे थे। मालूम होता था, मंदिर का आंगन कुछ छोटा हो गया है, दरवाजे कुछ नीचे हो गए हैं, भजन-मंडली के न होने से और भी सन्नाटा है। उधर नौजवान सभा के सामने खुले मैदान में शान्तिकुमार की कथा हो रही थी। ब्रजनाथ, सलीम, आत्मानन्द आदि आने वालों का स्वागत करते थे। थोड़ी देर में दरियां छोटी पड़ गईं और थोड़ी देर और गुजरने पर मैदान भी छोटा पड़ गया। अधिकांश लोग नंगे बदन थे, कुछ लोग चीथड़े पहने हुए। उनकी देह से तंबाकू और मैलेपन की दुर्गंध आ रही थी। स्त्रियां आभूषणहीन, मैली-कुचैली धोतियां या लहंगे पहने हुए थीं। रेशम और सुगंध और चमकीले आभूषणों का कहीं नाम न था, पर हृदयों में दया थी, धर्म था, सेवा-भाव था, त्याग था। नए आने वालों को देखते ही लोग जगह घेरने को पांव न फैला लेते थे, यों न ताकते थे, जैसे कोई शत्रु आ गया हो बल्कि और सिमट जाते थे और खुशी से जगह दे देते थे।

नौ बजे कथा आरंभ हुई। यह देवी-देवताओं और अवतारों की कथा न थी। ब्रह्मर्षियों के तप और तेज का वृत्तांत न था, क्षत्रियों के शौर्य और दान की गाथा न थी। यह उस पुरुष का पावन चरित्र था, जिसके यहां मन और कर्म की शुद्धता ही धर्म का मूल तत्व है। वही ऊंचा है, जिसका मन शुद्ध है वही नीच है, जिसका मन अशुद्ध है-जिसने वर्ण का स्वांग रचकर समाज के एक अंग को मदांधा और दूसरे को म्लेच्छ नहीं बनाया किसी के लिए उन्नति या उधार का द्वार नहीं बंद किया-एक के माथे पर बड़प्पन का तिलक और दूसरे के माथे पर नीचता का कलंक नहीं लगाया। इस चरित्र में आत्मोन्नति का एक सजीव संदेश था, जिसे सुनकर दर्शकों को ऐसा प्रतीत होता था, मानो उनकी आत्मा के बंधन खुल गए हैं संसार पवित्र और सुंदर हो गया है।

नैना को भी धर्म के पाखंड से चिढ़ थी। अमरकान्त उससे इस विषय पर अक्सर बातें किया करता था। अछूतों पर यह अत्याचार देखकर उसका खून भी खौल उठा था। समरकान्त का भय न होता, तो उसने ब्रह्मचारीजी को फटकार बताई होती इसीलिए जब शान्तिकुमार ने तिलकधारियों को आड़े हाथ लिया, तो उसकी आत्मा जैसे मुग्ध होकर उनके चरणों पर लोटने लगी। अमरकान्त से उनका बखान कितनी ही बार सुन चुकी थी। इस समय उनके प्रति उसके मन में ऐसी श्रद्धा उठी कि जाकर उनसे कहे-तुम धर्म के सच्चे देवता हो, तुम्हें नमस्कार करती हूं। अपने आसपास के आदमियों को क्रोधित देख-देखकर उसे भय हो रहा था कि कहीं यह लोग उन पर टूट न पड़ें। उसके जी में आता था, जाकर डॉक्टर के पास खड़ी हो जाए और उनकी रक्षा करे। जब वह बहुत-से आदमियों के साथ चले गए, तो उसका चित्त शांत हो गया। वह भी सुखदा के साथ घर चली आई।

सुखदा ने रास्ते में कहा-ये दुष्ट न जाने कहां से फट पड़े- उस पर डॉक्टर साहब उल्टे उन्हीं का पक्ष लेकर लड़ने को तैयार हो गए।

नैना ने कहा-भगवान् ने तो किसी को ऊंचा और किसी को नीचा नहीं बनाया-

'भगवान् ने नहीं बनाया, तो किसने बनाया?'

'अन्याय ने।'

'छोटे-बड़े संसार में सदा रहे हैं और रहेंगे।'

नैना ने वाद-विवाद करना उचित न समझा।

दूसरे दिन संध्या समय उसे खबर मिली कि आज नौजवान-सभा में अछूतों के लिए अलग कथा होगी, तो उसका मन वहां जाने के लिए लालायित हो उठा। वह मंदिर में सुखदा के साथ तो गई पर उसका जी उचाट हो रहा था। जब सुखदा झपकियां लेने लगी-आज यह कृत्य शीघ्र ही होने लगा-तो वह चुपके से बाहर आई और एक तांगे पर बैठकर नौजवान-सभा चली। वह दूर से जमाव देखकर लौट आना चाहती थी, जिसमें सुखदा को उसके आने की खबर न हो। उसे दूर से गैस की रोशनी दिखाई दी। जरा और आगे बढ़ी, तो ब्रजनाथ की स्वर लहरियां कानों में आईं। तांगा उस स्थान पर पहुंचा, तो शान्तिकुमार मंच पर आ गए थे। आदमियों का एक समुद्र उमड़ा हुआ था और डॉक्टर साहब की प्रतिभा उस समुद्र के ऊपर किसी विशाल व्यापक आत्मा की भांति छाई हुई थी। नैना कुछ देर तो तांगे पर मंत्र-मुग्ध-सी बैठी सुनती रही, फिर उतरकर पिछली कतार में सबके पीछे खड़ी हो गई।

एक बुढ़िया बोली-कब तक खड़ी रहोगी बिटिया, भीतर जाकर बैठ जाओ।

नैना ने कहा-बड़े आराम से हूं। सुनाई दे रहा है।

बुढ़िया आगे थी। उसने नैना का हाथ पकड़कर अपनी जगह पर खींच लिया और आप उसकी जगह पर पीछे हट आई। नैना ने अब शान्तिकुमार को सामने देखा। उनके मुख पर देवोपम तेज छाया हुआ था। जान पड़ता था, इस समय वह किसी दिव्य जगत् में है। मानो वहां की वायु सुधामयी हो गई है। जिन दरिद्र चेहरों पर वह फटकार बरसते देखा करती थी, उन पर आज कितना गर्व था, मानो वे किसी नवीन संपत्ति के स्वामी हो गए हैं। इतनी नम्रता, इतनी भद्रता, इन लोगों में उसने कभी न देखी थी।

शान्तिकुमार कह रहे थे-क्या तुम ईश्वर के घर से गुलामी करने का बीड़ा लेकर आए हो- तुम तन-मन से दूसरों की सेवा करते हो पर तुम गुलाम हो। तुम्हारा समाज में कोई स्थान नहीं। तुम समाज की बुनियाद हो। तुम्हारे ही ऊपर समाज खड़ा है, पर तुम अछूत हो। तुम मंदिरों में नहीं जा सकते। ऐसी अनीति इस अभागे देश के सिवा और कहां हो सकती है- क्या तुम सदैव इसी भांति पतित और दलित बने रहना चाहते हो-

एक आवाज आई-हमारा क्या बस है-

शान्तिकुमार ने उत्तेजना-पूर्ण स्वर में कहा-तुम्हारा बस उस समय तक कुछ नहीं है जब तक समझते हो तुम्हारा बस नहीं है। मंदिर किसी एक आदमी या समुदाय की चीज नहीं। वह हिन्दू-मात्र की चीज है। यदि तुम्हें कोई रोकता है, तो यह उसकी जबर्दस्ती है। मत टलो उस मंदिर के द्वार से, चाहे तुम्हारे ऊपर गोलियों की वर्षा ही क्यों न हो तुम जरा-जरा-सी बात के पीछे अपना सर्वस्व गंवा देते हो, जान दे देते हो, यह तो धर्म की बात है, और धर्म हमें जान से भी प्यारा होता है। धर्म की रक्षा सदा प्राणों से हुई है और प्राणों से होगी।

कल की मारधाड़ ने सभी को उत्तोजित कर दिया था। दिन-भर उसी विषय की चर्चा होती रही। बाईद तैयार होती रही। उसमें चिंगारी की कसर थी। ये शब्द चिंगारी का काम कर गए। संघ-शक्ति ने हिम्मत भी बढ़ा दी। लोगों ने पगड़ियां संभालीं, आसन बदले और एक-दूसरे की ओर देखा, मानो पूछ रहे हों- चलते हो, या अभी कुछ सोचना बाकी

है- और फिर शांत हो गए। साहस ने चूहे की भांति बिल से सिर निकालकर फिर अंदर खींच लिया।

नैना के पास वाली बुढ़िया ने कहा-अपना मंदिर लिए रहें, हमें क्या करना है-

नैना ने जैसे गिरती हुई दीवार को संभाला-मंदिर किसी एक आदमी का नहीं है।

शान्तिकुमार ने गूंजती हुई आवाज में कहा-कौन चलता है मेरे साथ अपने ठाकुरजी के दर्शन करने-

बुढ़िया ने सशंक होकर कहा-क्या अंदर कोई जाने देगा-

शान्तिकुमार ने मुट्ठी बंधकर कहा-मैं देखूंगा कौन नहीं जाने देता- हमारा ईश्वर किसी की संपत्ति नहीं है, जो संदूक में बंद करके रखा जाय। आज इस मुआमले को तय करना है, सदा के लिए।

कई सौ स्त्री-पुरुष शान्ति कुमार के साथ मंदिर की ओर चले। नैना का हृदय धड़कने लगा पर उसने अपने मन को धिक्कारा और जत्थे के पीछे-पीछे चली। वह यह सोच-सोचकर पुलकित हो रही थी कि भैया इस समय यहां होते तो कितने प्रसन्न होते। इसके साथ भांति-भांति की शंकाएं भी बुलबुलों की तरह उठ रही थीं।

ज्यों-ज्यों जत्था आगे बढ़ता था और लोग आ-आकर मिलते जाते थे पर ज्यों-ज्यों मंदिर समीप आता था, लोगों की हिम्मत कम होती जाती थी। जिस अधिकार से ये सदैव वंचित रहे, उसके लिए उनके मन में कोई तीव्र इच्छा न थी। केवल दुःख था मार का। वह विश्वास, जो न्याय-ज्ञान से पैदा होता है, वहां न था। फिर भी मनुष्यों की संख्या बढ़ती जाती थी। प्राण देने वाले तो बिरले ही थे। समूह की धौंस जमाकर विजय पाने की आशा ही उन्हें बढ़ा रही थी।

जत्था मंदिर के सामने पहुंचा तो दस बज गए थे। ब्रह्मचारीजी कई पुजारियों और पंडों के साथ लाठियां लिए द्वार पर खड़े थे। लाला समरकान्त भी पैतरे बदल रहे थे।

नैना को ब्रह्मचारी पर ऐसा क्रोध आ रहा था कि जाकर फटकारे, तुम बड़े धार्मात्मा बने हो आधी रात तक इसी मंदिर में जुआ खेलते हो, पैसे-पैसे पर ईमान बेचते हो, झूठी गवाहियां देते हो, द्वार-द्वार भीख मांगते हो। फिर भी तुम धर्म के ठेकेदार हो। तुम्हारे तो स्पर्श से ही देवताओं को कलंक लगता है।

वह मन के इस आग्रह को रोक न सकी। पीछे से भीड़ को चीरती हुई मंदिर के द्वार को चली आ रही थी कि शान्तिकुमार की निगाह उस पर पड़ गई। चौंककर बोले-तुम यहां कहां नैना- मैंने तो समझा था, तुम अंदर कथा सुन रही होगी।

नैना ने बनावटी रोष से कहा-आपने तो रास्ता रोक रखा है। कैसे जाऊं-

शान्ति कुमार ने भीड़ को सामने से हटाते हुए कहा-मुझे मालूम न था कि तुम रूकी खड़ी हो।

नैना ने जरा ठिठककर कहा-आप हमारे ठाकुरजी को भ्रष्ट करना चाहते हैं-

शान्तिकुमार उसका विनोद न समझ सके। उदास होकर बोले-क्या तुम्हारा भी यही विचार है, नैना-

नैना ने और रप्रा जमाया-आप अछूतों को मंदिर में भर देंगे, तो देवता भ्रष्ट न होंगे-

शान्तिकुमार ने गंभीर भाव से कहा-मैंने तो समझा था, देवता भ्रष्टों को पवित्र करते हैं, खुद भ्रष्ट नहीं होते।

सहसा ब्रह्मचारी ने गरजकर कहा-तुम लोग क्या यहां बलवा करने आए हो ठाकुरजी के मंदिर के द्वार पर-

एक आदमी ने आगे बढ़कर कहा-हम फौजदारी करने नहीं आए हैं। ठाकुरजी के दर्शन करने आए हैं।

समरकान्त ने उस आदमी को धक्का देकर कहा-तुम्हारे बाप-दादा भी कभी दर्शन करने आए थे कि तुम्हीं सबसे वीर हो।

शान्तिकुमार ने उस आदमी को संभालकर कहा-बाप-दादों ने जो काम नहीं किया, क्या पोतों-परपोतों के लिए भी वर्जित है, लालाजी- बाप-दादे तो बिजली और तार का नाम तक नहीं जानते थे, फिर आज इन चीजों का क्यों व्यवहार होता है- विचारों में विकास होता ही रहता है, उसे आप नहीं रोक सकते।

समरकान्त ने व्यंग्य से कहा-इसीलिए तुम्हारे विचार में यह विकास हुआ है कि ठाकुरजी की भक्ति छोड़कर उनके द्रोही बन बैठे-

शान्तिकुमार ने प्रतिवाद किया-ठाकुरजी का द्रोही मैं नहीं हूँ, द्रोही वह हैं जो उनके भक्तों को उनकी पूजा नहीं करने देते। क्या यह लोग हिन्दू-संस्कारों को नहीं मानते- फिर आपने मंदिर का द्वार क्यों बंद कर रखा है-

ब्रह्मचारी ने आंखें निकालकर कहा-जो लोग मांस-मदिरा तो खाते हैं, निखिद कर्म करते हैं, उन्हें मंदिर में नहीं आने दिया जा सकता।

शान्तिकुमार ने शांतभाव से जवाब दिया-मांस-मदिरा तो बहुत-से ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य भी खाते हैं। आप उन्हें क्यों नहीं रोकते- भंग तो प्रायः सभी पीते हैं। फिर वे क्यों यहां आचार्य और पुजारी बने हुए हैं-

समरकान्त ने डंडा संभालकर कहा-यह सब यों न मानेंगे। इन्हें डंडों से भगाना पड़ेगा। जरा जाकर थाने में इत्तिला कर दो कि यह लोग फौजदारी करने आए हैं।

इस वक्त तक बहुत-से पंडे-पुजारी जमा हो गए थे। सब-के-सब लाठियों के कुंदों से भीड़ को हटाने लगे। लोगों में भगदड़ मच गई। कोई पूरब भागा, कोई पश्चिम। शान्तिकुमार के सिर पर भी एक डंडा पड़ा पर खड़े आदमियों को समझाते रहे-भागो मत, भागो मत, सब-के-सब वहीं बैठ जाओ, ठाकुर के नाम पर अपने को बलिदान कर दो, धर्म के लिए...

पर दूसरी लाठी सिर पर इतने जोर से पड़ी कि पूरी बात भी मुंह से न निकलने पाई और वह गिर पड़े। संभलकर फिर उठना चाहते थे कि ताबड़-तोड़ कई लाठियां पड़ गईं। यहां तक कि वह बेहोश हो गए।

पांच

नैना बार-बार द्वार पर आती है और समरकान्त को बैठे देखकर लौट जाती है। आठ बज गए और लालाजी अभी तक गंगा-स्नान करने नहीं गए। नैना रात-भर करवटें बदलती रही। उस भीषण घटना के बाद क्या वह सो सकती थी- उसने शान्तिकुमारको चोट खाकर गिरते देखा, पर निर्जीव-सी खड़ी रही थी। अमर ने उसे प्रारंभिक चिकित्सा की मोटी-मोटी बातें सिखा दी थीं पर वह उस अवसर पर कुछ भी तो न कर सकी। वह देख रही थी कि आदमियों की भीड़ ने उन्हें घेर लिया है। फिर उसने देखा कि डॉक्टर आया और शान्तिकुमार को एक डोली पर लेटाकर ले गया पर वह अपनी जगह से नहीं हिली। उसका मन किसी बंधुए पशु की भांति बार-बार भागना चाहता था पर वह रस्सी को दोनों हाथ से पकड़े हुए पूरे बल के साथ उसे रोक रही थी। कारण क्या था- संकोच आखिर उसने कलेजा मजबूत किया और द्वार से निकलकर बरामदे में आ गई। समरकान्त ने पूछा-कहां जाती है-

'जरा मंदिर तक जाती हूं।'

'वहां का रास्ता ही बंद है। जाने कहां के चमार-सियार आकर द्वार पर बैठे हैं। किसी को जाने ही नहीं देते। पुलिस खड़ी उन्हें हटाने का यत्न कर रही है पर अभागे कुछ सुनते ही नहीं। यह सब उसी शान्तिकुमार का पाजीपन है। आज वही इन लोगों का नेता बना हुआ है। विलायत जाकर धर्म तो खो ही आया था, अब यहां हिन्दू-धर्म की जड़ खोद रहा है। न कोई आचार न विचार, उसी शोहदे सलीम के साथ खाता-पीता है। ऐसे धर्मद्रोहियों को और क्या सूझेगी- इन्हीं सभी की सोहबत ने अमर को चौपट किया इसे न जाने किसने अध्यापक बना दिया?'

नैना ने दूर से ही यह दृश्य देखकर लौट आने का बहाना किया, और मंदिर की ओर चली। फिर कुछ दूर के बाद एक गली में होकर अस्पताल की ओर चल पड़ी। दाहिने-बाएं चौकन्नी आंखों से ताकती हुई, वह तेजी से चली जा रही थी, मानो चोरी करने जा रही हो।

अस्पताल में पहुंची तो देखा, हजारों आदमियों की भीड़ लगी हुई है, और यूनिवर्सिटी के लड़के इधर-उधर दौड़ रहे हैं। सलीम भी नजर आया। वह उसे देखकर पीछे लौटना चाहती थी कि ब्रजनाथ मिल गया-अरे नैनादेवी तुम यहां कहां-डॉक्टर साहब को रात-भर होश नहीं रहा। सलीम और मैं उनके पास बैठे रहे। इस वक्त जाकर आंखें खोली हैं।

इतने परिचित आदमियों के सामने नैना कैसे ठहरती- वह तुरंत लौट पड़ी पर यहां आना निष्फल न हुआ। डॉक्टर साहब को होश आ गया है।

वह मार्ग में ही थी उसने सैकड़ों आदमियों को दौड़ते हुए आते देखा। वह एक गली में छिप गई। शायद फौजदारी हो गई। अब वह घर कैसे पहुंचेगी- संयोग से आत्मानन्दजी मिल गए। नैना को पहचानकर बोले-यहां तो गोलियां चल रही हैं। पुलिस कप्तान ने आकर ब्र कर दिया।

नैना के चेहरे का रंग उड़ गया। जैसे नसों में रक्त का प्रवाह बंद हो गया हो। बोली- क्या आप उधर ही से आ रहे हैं-

'हां, मरते-मरते बचा। गली-गली निकल आया। हम लोग केवल खड़े थे। बस, कप्तान ने ब्र कराने का हुक्म दे दिया। तुम कहां गई थीं?'

'मैं गंगा-स्नान करके लौटी जा रही थी। लोगों को भागते देखकर इधर चली आई। कैसे घर पहुंचूंगी?'

'इस समय तो उधर जाने में जोखिम है।'

फिर एक क्षण के बाद कदाचित अपनी कायरता पर लज्जित होकर कहा-किंतु गलियों में कोई डर नहीं है। चलो, मैं तुम्हें पहुंचा दूं। कोई पूछे, तो कह देना, मैं लाला समरकान्त की कन्या हूं।

नैना ने मन में कहा-यह महाशय संन्यासी बनते हैं, फिर भी इतने डरपोक पहले तो गरीबों को भड़काया और जब मार पड़ी, तो सबसे आगे भाग खड़े हुए। मौका न था, नहीं उन्हें ऐसा फटकारती कि याद करते। उनके साथ कई गलियों का चक्कर लगाती कोई दस बजे घर पहुंची। आत्मानन्द फिर उसी रास्ते से लौट गए। नैना ने उन्हें धन्यवाद भी न दिया। उनके प्रति अब उसे लेशमात्र भी श्रद्धा न थी।

वह अंदर गई, तो देखा-सुखदा सदर द्वार पर खड़ी है और सामने सड़क से लोग भागते चले जा रहे हैं।

सुखदा ने पूछा-तुम कहां चली गई थीं बीबी- पुलिस ने ब्र कर दिया बेचारे, आदमी भागे जा रहे हैं।

'मुझे तो रास्ते ही में पता लगा। गलियों में छिपती हुई आई हूं।'

'लोग कितने कायर हैं घरों के किवाड़ तक बंद कर लिए।'

'लालाजी जाकर पुलिस वालों को मना क्यों नहीं करते?'

'इन्हीं के आदेश से तो गोली चली है। मना कैसे करेंगे?'

'अच्छा दादा ही ने गोली चलवाई है?'

'हां, इन्हीं ने जाकर कप्तान से कहा है। और अब घर में छिपे बैठे हैं। मैं अछूतों का मंदिर जाना उचित नहीं समझती लेकिन गोलियां चलते देखकर मेरा खून खौल रहा है। जिस धर्म की रक्षा गोलियों से हो, उस धर्म में सत्य का लोप समझो। देखो, देखो उस आदमी बेचारे को गोली लग गई छाती से खून बह रहा है।'

यह कहती हुई वह समरकान्त के सामने जाकर बोली-क्यों लालाजी, रक्त की नदी बह जाय पर मंदिर का द्वार न खुलेगा।

समरकान्त ने अविचलित भाव से उत्तर दिया-क्या बकती है बहू, इन डोम-चमारों को मंदिर में घुसने दें- तू तो अमर से भी दो-दो हाथ आगे बढ़ी जाती है। जिसके हाथ का पानी नहीं पी सकते, उसे मंदिर में कैसे जाने दें-

सुखदा ने और वाद-विवाद न किया। वह मनस्वी महिला थी। यही तेजस्विता, जो अभिमान बनकर उसे विलासिनी बनाए हुए थी, जो उसे छोटों से मिलने न देती थी, जो उसे किसी से दबने न देती थी, उत्सर्ग के रूप में उबल पड़ी। वह उन्माद की दशा में घर से निकली और पुलिस वालों के सामने खड़ी होकर, भागने वालों को ललकारती हुई बोली-भाइयो क्यों भाग रहे हो - यह भागने का समय नहीं, छाती खोलकर सामने आने का समय है। दिखा दो कि तुम धर्म के नाम पर किस तरह प्राणों को होम करते हो। धर्मवीर ही ईश्वर को पाते हैं। भागने वालों की कभी विजय नहीं होती।

भागने वालों के पांव संभल गए। एक महिला को गोलियों के सामने खड़ी देखकर कायरता भी लज्जित हो गई। एक बुढ़िया ने पास आकर कहा-बेटी, ऐसा न हो, तुम्हें गोली लग जाय।

सुखदा ने निश्चल भाव से कहा-जहां इतने आदमी मर गए वहां मेरे जाने से कोई हानि न होगी। भाइयो, बहनो भागो मत तुम्हारे प्राणों का बलिदान पाकर ही ठाकुरजी तुमसे प्रसन्न होंगे।

कायरता की भांति वीरता भी संक्रामक होती है। एक क्षण में उड़ते हुए पत्तों की तरह भागने वाले आदमियों की एक दीवार-सी खड़ी हो गई। अब डंडे पड़ें, या गोलियों की वर्षा हो, उन्हें भय नहीं।

बंदूकों से धांय धांय की आवाजें निकलीं। एक गोली सुखदा के कानों के पास से सन से निकल गई। तीन-चार आदमी गिर पड़े पर दीवार ज्यों-की-त्यों अचल खड़ी थी।

फिर बंदूकें छूटीं। चार-पांच आदमी फिर गिरे लेकिन दीवार न हिली। सुखदा उसे थामे हुए थी। एक ज्योति सारे घर को प्रकाश से भर देती है। बलवान् हृदय उसे दीपक की भांति समूह में साहस भर देता है।

भीषण दृश्य था। लोग अपने प्यारों को आंखों के सामने तड़पते देखते थे पर किसी की आंखों में आंसू की बूंद न थी। उनमें इतना साहस कहां से आ गया था- फौजें क्या हमेशा मैदान में डटी ही रहती हैं- वही सेना जो एक दिन प्राणों

की बाजी खेलती है, दूसरे दिन बंदूक की पहली आवाज पर मैदान से भाग खड़ी होती है पर यह किराए के सिपाहियों का हाल है, जिनमें सत्य और न्याय का बल नहीं होता। जो केवल पेट के लिए या लूट के लिए लड़ते हैं। इस समूह में सत्य और धर्म का बल आ गया था। हरेक स्त्री और पुरुष, चाहे वह कितना मूर्ख क्यों न हो, समझने लगा था कि हम अपने धर्म और हक के लिए लड़ रहे हैं, और धर्म के लिए प्राण देना अछूत-नीति में भी उतनी ही गौरव की बात है जितनी द्विज-नीति में।

मगर यह क्या- पुलिस के जवान क्यों संगीनें उतार रहे हैं- बंदूकें क्यों कंधों पर रख लीं- अरे सब-के-सब तो पीछे की तरफ घूम गए। उनकी चार-चार की कतारें बन रही हैं। मार्च का हुक्म मिलता है। सब-के-सब मंदिर की तरफ लौटे जा रहे हैं। एक कांस्टेबल भी नहीं रहा। केवल लाला समरकान्त पुलिस सुपरिंटेंडेंट से कुछ बातें कर रहे हैं और जन-समूह उसी भांति सुखदा के पीछे निश्चल खड़ा है। एक क्षण में सुपरिंटेंडेंट भी चला जाता है। फिर लाला समरकान्त सुखदा के समीप आकर ऊंचे स्वर में बोलते हैं-

मंदिर खुल गया है। जिसका जी चाहे दर्शन करने जा सकता है। किसी के लिए रोक-टोक नहीं है।

जन-समूह में हलचल पड़ जाती है। लोग उन्मत्ता हो-होकर सुखदा के पैरों पर गिरते हैं, और तब मंदिर की तरफ दौड़ते हैं।

मगर दस मिनट के बाद ही समूह उसी स्थान पर लौट आता है, और लोग अपने प्यारों की लाशों से गले मिलकर रोने लगते हैं। सेवाश्रम के छात्र डोलियां ले-लेकर आ जाते हैं, और आहतों की उठा ले जाते हैं। वीरगति पाने वालों के क्रिया-कर्म का आयोजन होने लगता है। बजाजों की दूकानों से कपड़े के थान आ जाते हैं, कहीं से बांस, कहीं से रस्सियां, कहीं से घी, कहीं से लकड़ी। विजेताओं ने धर्म ही पर विजय नहीं पाई है, हृदयों पर भी विजय पाई है। सारा नगर उनका सम्मान करने के लिए उतावला हो उठा है।

संध्या समय इन धर्म-विजेताओं की अर्थियां निकलीं। शहर फट पड़ा। जनाजे पहले मंदिर-द्वार पर गए। मंदिर के दोनों द्वार खुले हुए थे। पुजारी और ब्रह्मचारी किसी का पता न था। सुखदा ने मंदिर से तुलसीदल लाकर अर्थियों पर रखा और मरने वालों के मुख में चरणामृत डाला। इन्हीं द्वारों को खुलवाने के लिए यह भीषण संग्राम हुआ। अब वह द्वार खुला हुआ वीरों का स्वागत करने के लिए हाथ फैलाए हुए है पर ये रुठने वाले अब द्वार की ओर आंख उठाकर भी नहीं देखते। कैसे विचित्र विजेता हैं जिस वस्तु के लिए प्राण दिए, उसी से इतना विराग।

जरा देर के बाद अर्थियां नदी की ओर चलीं। वही हिन्दू-समाज जो एक घंटा पहले इन अछूतों से घृणा करता था, इस समय उन अर्थियों पर फूलों की वर्षा कर रहा था। बलिदान में कितनी शक्ति है-

और सुखदा- वह तो विजय की देवी थी। पग-पग पर उसके नाम की जय-जयकार होती थी। कहीं फूलों की वर्षा होती थी, कहीं मेवे की, कहीं रुपयों की। घड़ी भर पहले वह नगर में नगण्य थी। इस समय वह नगर की रानी थी। इतना यश बिरले ही पाते हैं। उसे इस समय वास्तव में दोनों तरफ के ऊंचे मकान कुछ नीचे, और सड़क के दोनों ओर खड़े होने वाले मनुष्य कुछ छोटे मालूम होते थे, पर इतनी नम्रता, इतनी विनय उसमें कभी न थी। मानो इस यश और ऐश्वर्य के भार से उसका सिर झुका जाता हो।

इधर गंगा के तट पर चिताएं जल रही थीं उधर मंदिर इस उत्सव के आनंद में दीपकों के प्रकाश से जगमगा रहा था मानो वीरों की आत्माएं चमक रही हों॥

छः

दूसरे दिन मंदिर में कितना समारोह हुआ, शहर में कितनी हलचल मची, कितने उत्सव मनाए गए, इसकी चर्चा करने की जरूरत नहीं। सारे दिन मंदिर में भक्तों का तांता लगा रहा। ब्रह्मचारी आज फिर विराजमान हो गए थे और जितनी दक्षिणा उन्हें आज मिली, उतनी, शायद उम्र भर में न मिली होगी। इससे उनके मन का विद्रोह बहुत कुछ शांत हो गया किंतु ऊंची जाति वाले सज्जन अब भी मंदिर में देह बचाकर आते और नाक सिकोड़े हुए कतराकर निकल जाते थे। सुखदा मंदिर के द्वार पर खड़ी लोगों का स्वागत कर रही थी। स्त्रियों से गले मिलती थी बालकों को प्यार करती थी और पुरुषों को प्रणाम करती थी।

कल की सुखदा और आज की सुखदा में कितना अंतर हो गया- भोग-विलास पर प्राण देने वाली रमणी आज सेवा और दया की मूर्ति बनी हुई है। इन दुखियों की भक्ति, श्रद्धा और उत्साह देख-देखकर उसका हृदय पुलकित हो रहा है। किसी की देह पर साबुत कपड़े नहीं हैं, आंखों से सूझता नहीं, दुर्बलता के मारे सीधो पांव नहीं पड़ते, पर भक्ति में मस्त दौड़े चले आ रहे हैं, मानो संसार का राज्य मिल गया हो, जैसे संसार से दुख-दरिद्रता का लोप हो गया हो। ऐसी सरल, निष्कपट भक्ति के प्रवाह में सुखदा भी बही जा रही थी। प्रायः मनस्वी, कर्मशील, महत्तवाकांक्षी प्राणियों की यही प्रकृति है। भोग करने वाले ही वीर होते हैं।

छोटे-बड़े सभी सुखदा को पूज्य समझ रहे थे, और उनकी यह भावना सुखदा में एक गर्वमय सेवा का भाव प्रदीप्त कर रही थी। कल उसने जो कुछ किया, वह एक प्रबल आवेश में किया। उसका फल क्या होगा, इसकी उसे जरा भी चिंता न थी। ऐसे अवसरों पर हानि-लाभ का विचार मन को दुर्बल बना देता है। आज वह जो कुछ कर रही थी, उसमें उसके मन का अनुराग था, सद्भाव था। उसे अब अपनी शक्ति और क्षमता का ज्ञान हो गया है, वह नशा हो गया है, जो अपनी सुधा-बुधा भूलकर सेवा-रत हो जाता है जैसे अपनी आत्मा को पा गई है।

अब सुखदा नगर की नेत्री है। नगर में जाति-हित के लिए जो काम होता है, सुखदा के हाथों उसका श्रीगणेश होता है। कोई उत्सव हो, कोई परमार्थ का काम हो, कोई राष्ट्र का आंदोलन हो, सुखदा का उसमें प्रमुख भाग होता है। उसका जी चाहे या न चाहे, भक्त लोग उसे खींच ले जाते हैं। उसकी उपस्थिति किसी जलसे की सफलता की कुंजी है। आश्चर्य यह है कि वह बोलने भी लगी है, और उसके भाषण में चाहे भाषा चातुर्य न हो, पर सच्चे उद्गार अवश्य होते हैं। शहर में कई सार्वजनिक संस्थाएं हैं, कुछ सामाजिक, कुछ राजनैतिक, कुछ धार्मिक। सभी निर्जीव-सी पड़ी थीं। सुखदा के आते ही उनमें स्तुति-सी आ गई है। मादक वस्तु-वहिष्कार-सभा बरसों से बेजान पड़ी थी। न कुछ प्रचार होता था न कोई संगठन। उसका मंत्री एक दिन सुखदा को खींच ले गया। दूसरे ही दिन उस सभा की एक भजन-मंडली बन गई, कई उपदेशक निकल आए, कई महिलाएं घर-घर प्रचार करने के लिए तैयार हो गईं और मुहल्ले-मुहल्ले पंचायतें बनने लगीं। एक नए जीवन की सृष्टि हो गई।

अब सुखदा को गरीबों की दुर्दशा के यथार्थ रूप देखने के अवसर मिलने लगे। अब तक इस विषय में उसे जो कुछ ज्ञान था, वह सुनी-सुनाई बातों पर आधारित था। आंखों से देखकर उसे ज्ञात हुआ, देखने और सुनने में बड़ा अंतर है। शहर की उन अंधेरी तंग गलियों में, जहां वायु और प्रकाश का कभी गुजर ही न होता था, जहां की जमीन ही नहीं, दीवारें भी सीली रहती थीं, जहां दुर्गन्ध के मारे नाक फटती थी, भारत की कमाऊ संतान रोग और दरिद्रता के पैरों तले-दबी हुई अपने क्षीण जीवन को मृत्यु के हाथों से छीनने में प्राण दे रही थीं। उसे अब मालूम हुआ कि अमरकान्त को धन और विलास से जो विरोध था, यह कितना यथार्थ था। उसे खुद अब उस मकान में रहते, अच्छे-अच्छे वस्त्र

पहनते, अच्छे-अच्छे पदार्थ खाते ग्लानि होती थी। नौकरों से काम लेना उसने छोड़ दिया। अपनी धोती खुद छांटती थी, घर में झाड़ू खुद लगाती। वह जो आठ बजे सोकर उठती थी, अब मुंह-अंधेरे उठती, और घर के काम-काज में लग जाती। नैना तो अब उसकी पूजा-सी करती थी। लालाजी अपने घर की यह दशा देख-देख कुढ़ते थे, पर करते क्या- सुखदा के यहां तो अब नित्य दरबार-सा लगा रहता था। बड़े-बड़े नेता, बड़े-बड़े विद्वान् आते रहते थे। इसलिए वह अब बहू से कुछ दबते थे। गृहस्थी के जंजाल से अब उनका मन ऊबने लगा था। जिस घर में उनसे किसी को सहानुभूति न हो, उस घर में कैसे अनुराग होता। जहां अपने विचारों का राज हो, वही अपना घर है। जो अपने विचारों को मानते हों, वही अपने सगे हैं। यह घर अब उनके लिए सराय-मात्र था। सुखदा या नैना, दोनों ही से कुछ कहते उन्हें डर लगता था।

एक दिन सुखदा ने नैना से कहा-बीबी, अब तो इस घर में रहने को जी नहीं चाहता। लोग कहते होंगे, आप तो महल में रहती हैं, और हमें उपदेश करती हैं। महीनों दौड़ते हो गए, सब कुछ करके हार गई, पर नशेबाजों पर कुछ भी असर न हुआ। हमारी बातों पर कोई कान ही नहीं देता। अधिकतर तो लोग अपनी मुसीबतों को भूल जाने ही के लिए नशे करते हैं वह हमारी क्यों सुनने लगे- हमारा असर तभी होगा, जब हम भी उन्हीं की तरह रहें।

कई दिनों से सर्दी चमक रही थी, कुछ वर्षा हो गई थी और पूस की ठंडी हवा आर्द्र होकर आकाश को कुहरे से आच्छन्न कर रही थी। कहीं-कहीं पाला भी पड़ गया था-मुन्ना बाहर जाकर खेलना चाहता था-वह अब लटपटाता हुआ चलने लगा था-पर नैना उसे ठंड के भय से रोके हुए थी। उसके सिर पर ऊनी कनटोप बंधती हुई बोली-यह तो ठीक है पर उनकी तरह रहना हमारे लिए साधय भी है, यह देखना है। मैं तो शायद एक ही महीने में मर जाऊं।

सुखदा ने जैसे मन-ही-मन निश्चय करके कहा-मैं तो सोच रही हूं, किसी गली में छोटा-सा घर लेकर रहूं। इसका कनटोप उतारकर छोड़ क्यों नहीं देतीं- बच्चों को गमलों के पौधो बनाने की जरूरत नहीं, जिन्हें लू का एक झोंका भी सुखा सकता है। इन्हें तो जंगल के वृक्ष बनाना चाहिए, जो धूप और वर्षा ओले और पाले किसी की परवाह नहीं करते।

नैना ने मुस्कराकर कहा-शुरू से तो इस तरह रखा नहीं, अब बेचारे की सांसत करने चली हो। कहीं ठंड-वंड लग जाए, तो लेने के देने पड़ें।

'अच्छा भई, जैसे चाहो रखो, मुझे क्या करना है?'

'क्यों, इसे अपने साथ उस छोटे-से घर में न रखोगी?'

'जिसका लड़का है, वह जैसे चाहे रखे। मैं कौन होती हूं।'

'अगर भैया के सामने तुम इस तरह रहतीं, तो तुम्हारे चरण धोधोकर पीते ॥'

सुखदा ने अभिमान के स्वर में कहा-मैं तो जो तब थी, वही अब भी हूं। जब दादाजी से बिगड़कर उन्होंने अलग घर लिया था, तो क्या मैंने उनका साथ न दिया था- वह मुझे विलासिनी समझते थे, पर मैं कभी विलास की लौंडी नहीं रही हां, मैं दादाजी को रूष्ट नहीं करना चाहती थी। यही बुराई मुझमें थी। मैं अब अलग रहूंगी, तो उनकी आज्ञा से। तुम देख लेना, मैं इस ढंग से प्रश्न उठाऊंगी कि वह बिलकुल आपत्ति न करेंगे। चलो, जरा डॉक्टर शान्तिकुमार को देख आवें। मुझे तो उधर जाने का अवकाश ही नहीं मिला।

नैना प्रायः एक बार रोज शान्तिकुमार को देख आती थी। हां, सुखदा से कुछ कहती न थी। वह अब उठने-बैठने लगे

थे पर अभी इतने दुर्बल थे कि लाठी के सहारे बगैर एक पग भी न चल सकते थे। चोटें उन्होंने खाई-छः महीने से शय्या-सेवन कर रहे थे-और यश सुखदा ने लूटा। वह दुःख उन्हें और भी घुलाए डालता था। यद्यपि उन्होंने अंतरंग मित्रों से भी अपनी मनोव्यथा नहीं कहीं पर यह कांटा खटकता अवश्य था। अगर सुखदा स्त्री न होती, और वह भी प्रिय शिष्य और मित्र की, तो कदाचित्त वह शहर छोड़कर भाग जाते। सबसे बड़ा अनर्थ यह था कि इन छः महीनों में सुखदा दो-तीन बार से ज्यादा उन्हें देखने न गई थी। वह भी अमरकान्त के मित्र थे और इस नाते से सुखदा को उन पर विशेष श्रद्धा न थी।

नैना को सुखदा के साथ जाने में कोई आपत्ति न हुई। रेणुका देवी ने कुछ दिनों से मोटर रख ली थी, पर वह रहती थी सुखदा ही की सवारी में। दोनों उस पर बैठकर चलीं मुन्ना भला क्यों अकेले रहने लगा था- नैना ने उसे भी ले लिया।

सुखदा ने कुछ दूर जाने के बाद कहा-यह सब अमीरों के चोंचले हैं। मैं चाहूं तो दो-तीन आने में अपना निबाह कर सकती हूं।

नैना ने विनोद-भाव से कहा-पहले करके दिखा दो, तो मुझे विश्वास आए। मैं तो नहीं कर सकती।

'जब तक इस घर में रहूंगी, मैं भी न कर सकूंगी। इसलिए तो मैं अलग रहना चाहती हूं।'

'लेकिन साथ तो किसी को रखना ही पड़ेगा?'

'मैं कोई जरूरत नहीं समझती। इसी शहर में हजारों औरतें अकेली रहती हैं। फिर मेरे लिए क्या मुश्किल है- मेरी रक्षा करने वाले बहुत हैं। मैं खुद अपनी रक्षा कर सकती हूं। (मुस्कराकर) हां, खुद किसी पर मरने लगूं, तो दूसरी बात है।'

शान्तिकुमार सिर से पांव तक कंबल लपेटे, अंगठी जलाए, कुर्सी पर बैठे एक स्वास्थ्य-संबंधी पुस्तक पढ़ रहे थे। वह कैसे जल्द-से-जल्द भले-चंगे हो जायं, आजकल उन्हें यही चिंता रहती थी। दोनों रमणियों के आने का समाचार पाते ही किताब रख दी और कंबल उतारकर रख दिया। अंगीठी भी हटाना चाहते थे पर इसका अवसर न मिला। दोनों ज्योंही कमरे में आईं, उन्हें प्रणाम करके कुर्सियों पर बैठने का इशारा करते हुए बोले-मुझे आप लोगों पर ईर्ष्या हो रही है। आप इस शीत में घूम-फिर रही हैं और मैं अंगीठी जलाए पड़ा हूं। करूं क्या, उठा ही नहीं जाता। जिंदगी के छः महीने मानो कट गए, बल्कि आधी उम्र कहिए। मैं अच्छा होकर भी आधा ही रहूंगा। कितनी लज्जा आती है कि देवियां बाहर निकलकर काम करें और मैं कोठरी में बंद पड़ा रहूं।

सुखदा ने जैसे आंसू पोंछते हुए कहा-आपने इस नगर में जितनी जागृति फैला दी, उस हिसाब से तो आपकी उम्र चौगुनी हो गई। मुझे तो बैठे-बैठाए यश मिल गया।

शान्तिकुमार के पीले मुख पर आत्मगौरव की आभा झलक पड़ी। सुखदा के मुंह से यह सनद पाकर, मानो उनका जीवन सफल हो गया। बोले-यह आपकी उदारता है। आपने जो कुछ कर दिखाया और कर रही हैं, वह आप ही कर सकती हैं। अमरकान्त आएंगे तो उन्हें मालूम होगा कि अब उनके लिए यहां स्थान नहीं है। यह साल भर में जो कुछ हो गया इसकी वह स्वप्न में भी कल्पना न कर सकते थे। यहां सेवाश्रम में लड़कों की संख्या बड़ी तेजी से बढ़ रही है। अगर यही हाल रहा, तो कोई दूसरी जगह लेनी पड़ेगी। अध्यापक कहां से आएंगे, कह नहीं सकता। सभ्य समाज की यह उदासीनता देखकर मुझे तो कभी-कभी बड़ी चिंता होने लगती है। जिसे देखिए स्वार्थ में मगन है। जो जितना ही महान है उसका स्वार्थ भी उतना ही महान है। यूरोप की डेढ़ सौ साल तक उपासना करके हमें यही वरदान मिला

है। लेकिन यह सब होने पर भी हमारा भविष्य उज्ज्वल है। मुझे इसमें संदेह नहीं। भारत की आत्मा अभी जीवित है और मुझे विश्वास है कि वह समय आने में देर नहीं है, जब हम सेवा और त्याग के पुराने आदर्श पर लौट आएं। तब धन हमारे जीवन का ध्येय न होगा। तब हमारा मूल्य धन के कांटे पर न तौला जाएगा।

मुन्ने ने कुर्सी पर चढ़कर मेज पर से दवात उठा ली थी और अपने मुंह में कालिमा पोत-पोतकर खुश हो रहा था। नैना ने दौड़कर उसके हाथ से दवात छीन ली और एक धौल जमा दिया। शान्तिकुमार ने उठने की असफल चेष्टा करके कहा-क्यों मारती हो नैना, देखो तो कितना महान् पुरुष है, जो अपने मुंह में कालिमा पोतकर भी प्रसन्न होता है, नहीं तो हम अपनी कालिमाओं को सात परदों के अन्दर छिपाते हैं ं।

नैना ने बालक को उनकी गोद में देते हुए कहा-तो लीजिए, इस महान् पुरुष को आप ही। इसके मारे चैन से बैठना मुश्किल है।

शान्तिकुमार ने बालक को छाती से लगा लिया। उस गर्म और गुदगुदे स्पर्श में उनकी आत्मा ने जिस परितृप्ति और माधुर्य का अनुभव किया, वह उनके जीवन में बिल्कुल नया था। अमरकान्त से उन्हें जितना स्नेह था, वह जैसे इस छोटे से रूप में सिमटकर और ठोस और भारी हो गया था। अमर की याद करके उनकी आंखें सजल हो गईं। अमर ने अपने को कितने अतुल आनंद से वंचित कर रखा है, इसका अनुमान करके वह जैसे दब गए। आज उन्हें स्वयं अपने जीवन में एक अभाव का, एक रिक्तता का आभास हुआ। जिन कामनाओं का वह अपने विचार में संपूर्णतः दमन कर चुके थे वह राख में छिपी हुई चिंगारियों की भांति सजीव हो गईं।

मुन्ने ने हाथों की स्याही शान्तिकुमार के मुख में पोतकर नीचे उतरने का आग्रह किया, मानो इसीलिए यह उनकी गोद में गया था। नैना ने हंसकर कहा-जरा अपना मुंह तो देखिए, डॉक्टर साहब इस महान् पुरुष ने आपके साथ होली खेल डाली बदमाश है।

सुखदा भी हंसी को न रोक सकी। शान्तिकुमार ने शीशे में मुंह देखा, तो वह भी जोर से हंसे। यह कालिमा का टीका उन्हें इस समय यश के तिलक से भी कहीं उल्लासमय जान पड़ा।

सहसा सुखदा ने पूछा-आपने शादी क्यों नहीं की, डॉक्टर साहब-

शान्तिकुमार सेवा और व्रत का जो आधार बनाकर अपने जीवन का निर्माण कर रहे थे, वह इस शय्या सेवन के दिनों में कुछ नीचे खिसकता हुआ नजर जान पड़ रहा था। जिसे उन्होंने जीवन का मूल सत्य समझा था, वह अब उतना दृढ़ न रह गया था। इस आपातकाल में ऐसे कितने अवसर आए, जब उन्हें अपना जीवन भार-सा मालूम हुआ। तीमारदारों की कमी न थी। आठों पहर दो-चार आदमी घेरे ही रहते थे। नगर के बड़े-बड़े नेताओं का आना-जाना भी बराबर होता रहता था पर शान्तिकुमार को ऐसा जान पड़ता था कि वह दूसरों की दया या शिष्टता पर बोझ हो रहे हैं। इन सेवाओं में वह माधुर्य, वह कोमलता न थी, जिससे आत्मा की तृप्ति होती। भिक्षुक को क्या अधिकार है कि वह किसी के दान का निरादर करे। दान-स्वरूप उसे जो कुछ मिल जाय, वह सभी स्वीकार करना होगा। इन दिनों उन्हें कितनी ही बार अपनी माता की याद आई थीं। वह स्नेह कितना दुर्लभ था। नैना जो एक क्षण के लिए उनका हाल पूछने आ जाती थी, इसमें उन्हें न जाने क्यों एक प्रकार की स्फूर्ति का अनुभव होता था। वह जब तक रहती थी, उनकी व्यथा जाने कहां छिप जाती थी- उसके जाते ही फिर वही कराहना, वही बेचैनी उनकी समझ में कदाचित् यह नैना का सरल अनुराग ही था, जिसने उन्हें मौत के मुंह से निकाल लिया लेकिन वह स्वर्ग की देवी कुछ नहीं।

सुखदा का यह प्रश्न सुनकर मुस्कराते हुए बोले-इसीलिए कि विवाह करके किसी को सुखी नहीं देखा।

सुखदा ने समझा यह उस पर चोट है। बोली-दोष भी बराबर स्त्रियों का ही देखा होगा, क्यों-

शान्तिकुमार ने जैसे अपना सिर पत्थर से बचाया-यह तो मैंने नहीं कहा। शायद इसकी उल्टी बात हो। शायद नहीं, बल्कि उल्टी है।

'खैर, इतना तो आपने स्वीकार किया। धन्यवाद। इससे तो यही सि' हुआ कि पुरुष चाहे तो विवाह करके सुखी हो सकता है।'

'लेकिन पुरुष में थोड़ी-सी पशुता होती है, जिसे वह इरादा करके भी हटा नहीं सकता। वही पशुता उसे पुरुष बनाती है। विकास के क्रम से वह स्त्री से पीछे है। जिस दिन वह पूर्ण विकास को पहुंचेगा, वह भी स्त्री हो जाएगा। वात्सल्य, स्नेह, कोमलता, दया, इन्हीं आधारों पर यह सृष्टि थमी हुई है और यह स्त्रियों के गुण हैं। अगर स्त्री इतना समझ ले, तो फिर दोनों का जीवन सुखी हो जाय। स्त्री पशु के साथ पशु हो जाती है, तभी दोनों सुखी होते हैं।'

सुखदा ने उपहास के स्वर में कहा-इस समय तो आपने सचमुच एक आविष्कार कर डाला। मैं तो हमेशा यह सुनती आती हूं कि स्त्री मूर्ख है, ताड़ना के योग्य है, पुरुषों के गले का बंधन है और जाने क्या-क्या- बस, इधर से भी मरदों की जीत, उधर से भी मरदों की जीत। अगर पुरुष नीचा है तो उसे स्त्रियों का शासन क्यों अप्रिय लगे-परीक्षा करके देखा तो होता, आप तो दूर से ही डर गए।

शान्तिकुमार ने कुछ झेंपते हुए कहा-अब अगर चाहूं भी, तो बूढ़ों को कौन पूछता है-

'अच्छा, आप बूढ़े भी हो गए- तो किसी अपनी-जैसी बुढ़िया से कर लीजिए न?'

'जब तुम जैसी विचारशील और अमर-जैसे गंभीर स्त्री-पुरुष में न बनी, तो फिर मुझे किसी तरह की परीक्षा करने की जरूरत नहीं रही। अमर-जैसा विनय और त्याग मुझमें नहीं है, और तुम जैसी उदार और?'

सुखदा ने बात काटी-मैं उदार नहीं हूं, न विचारशील हूं। हां, पुरुष के प्रति अपना धर्म समझती हूं। आप मुझसे बड़े हैं, और मुझसे कहीं बुद्धिमान हैं। मैं आपको अपने बड़े भाई के तुल्य समझती हूं। आज आपका स्नेह और सौजन्य देखकर मेरे चित्त को बड़ी शांति मिली। मैं आपसे बेशर्म होकर पूछती हूं ऐसा पुरुष जो, स्त्री के प्रति अपना धर्म न समझे, क्या अधिकार है कि वह स्त्री से व्रत-धारिणी रहने की आशा रखे- आप सत्यवादी हैं। मैं आपसे पूछती हूं, यदि मैं उस व्यवहार का बदला उसी व्यवहार से दूं, तो आप मुझे क्षम्य समझेंगे-

शान्तिकुमार ने निशंक भाव से कहा-नहीं।

'उन्हें आपने क्षम्य समझ लिया?'

'नहीं ।'

'और यह समझकर भी आपने उनसे कुछ नहीं कहा- कभी एक पत्र भी नहीं लिखा- मैं पूछती हूं, इस उदासीनता का क्या कारण है- यही न कि इस अवसर पर एक नारी का अपमान हुआ है। यदि वही कृत्य मुझसे हुआ होता, तब भी आप इतने ही उदासीन रह सकते- बोलिए।'

शान्तिकुमार रो पड़े। नारी-हृदय की संचित व्यथा आज इस भीषण विद्रोह के रूप में प्रकट होकर कितनी करुण हो

गई थी।

सुखदा उसी आवेश में बोली-कहते हैं, आदमी की पहचान उसकी संगत से होती है। जिसकी संगत आप, मुहम्मद सलीम और स्वामी आत्मानन्द जैसे महानुभावों की हो, वह अपने धर्म को इतना भूल जाय यह बात मेरी समझ में नहीं आती। मैं यह नहीं कहती कि मैं निर्दोष हूं। कोई स्त्री यह दावा नहीं कर सकती, और न कोई पुरुष ही यह दावा कर सकता है। मैंने सकीना से मुलाकात की है। संभव है उसमें वह गुण हो, जो मुझमें नहीं है। वह ज्यादा मधुर है, उसके स्वभाव में कोमलता है। हो सकता है, वह प्रेम भी अधिक कर सकती हो लेकिन यदि इसी तरह सभी पुरुष और स्त्रियां तुलना करके बैठ जायं, तो संसार की क्या गति होगी- फिर तो यहां रक्त और आंसुओं की नदियों के सिवा और कुछ न दिखाई देगा।

शान्तिकुमार ने परास्त होकर कहा-मैं अपनी गलती को मानता हूं, सुखदादेवी मैं तुम्हें न जानता था और इस भय में था कि तुम्हारी ज्यादाती है। मैं आज ही अमर को पत्र-

सुखदा ने फिर बात काटी-नहीं, मैं आपसे यह प्रेरणा करने नहीं आई हूं, और न यह चाहती हूं कि आप उनसे मेरी ओर से दया की भिक्षा मांगें। यदि वह मुझसे दूर भागना चाहते हैं, तो मैं भी उनको बंधकर नहीं रखना चाहती। पुरुष को जो आजादी मिली है, वह उसे मुबारक रहे वह अपना तन-मन गली-गली बेचता फिरे। मैं अपने बंधन में प्रसन्न हूं। और ईश्वर से यही विनती करती हूं कि वह इस बंधन में मुझे डाले रखे। मैं जलन या ईर्ष्या से विचलित हो जाऊं, उस दिन के पहले वह मेरा अंत कर दे। मुझे आपसे मिलकर आज जो तृप्ति हुई, उसका प्रमाण यही है कि मैं आपसे वह बातें कह गई, जो मैंने कभी अपनी माता से भी नहीं कहीं। बीबी आपका बखान करती थी, उससे ज्यादा सज्जनता आपमें पाई मगर आपको मैं अकेला न रहने दूंगी। ईश्वर वह दिन लाए कि मैं इस घर में भाभी के दर्शन करूं।

जब दोनों रमणियां यहां से चलीं, तो डॉक्टर साहब लाठी टेकते हुए फाटक तक उन्हें पहुंचाने आए और फिर कमरे में आकर लेटे, तो ऐसा जान पड़ा कि उनका यौवन जाग उठा है। सुखदा के वेदना से भरे हुए शब्द उनके कानों में गूंज रहे थे और नैना मुन्ने को गोद में लिए जैसे उनके सम्मुख खड़ी थी।

सात

उसी रात को शान्तिकुमार ने अमर के नाम खत लिखा। वह उन आदमियों में थे जिन्हें और सभी कामों के लिए समय मिलता है, खत लिखने के लिए नहीं मिलता। जितनी अधिक घनिष्ठता, उतनी ही बेफिक्री। उनकी मैत्री खतों से कहीं गहरी होती है। शान्तिकुमार को अमर के विषय में सलीम से सारी बातें मालूम होती रहती थीं। खत लिखने की क्या जरूरत थी- सकीना से उसे प्रेम हुआ इसकी जिम्मेदारी उन्होंने सुखदा पर रखी थी पर आज सुखदा से मिलकर उन्होंने चित्र का दूसरा रूख भी देखा, और सुखदा को उस जिम्मेदारी से मुक्त कर दिया। खत जो लिखा, वह इतना लंबा-चौड़ा कि एक ही पत्र में साल भर की कसर निकल गई। अमरकान्त के जाने के बाद शहर में जो कुछ हुआ, उसकी पूरी-पूरी कैफियत बयान की, और अपने भविष्य के संबंध में उसकी सलाह भी पूछी। अभी तक उन्होंने नौकरी से इस्तीफा नहीं दिया था। पर इस आंदोलन के बाद से उन्हें अपने पद पर रहना कुछ जंचता न था। उनके मन में बार-बार शंका होती, जब तुम गरीबों के वकील बनते हो, तो तुम्हें क्या हक है कि तुम पांच सौ रुपये माहवार सरकार से वसूल करो। अगर तुम गरीबों की तरह नहीं रह सकते, तो गरीबों की वकालत करना छोड़ दो। जैसे और

लोग आराम करते हैं, वैसे तुम भी मजे से खाते-पीते रहो। लेकिन इस निद्रऊद्धिता को उनकी आत्मा स्वीकार न करती थी। प्रश्न था, फिर गुजर कैसे हो- किसी देहात में जाकर खेती करें, या क्या- यों रोटियां तो बिना काम किए भी चल सकती थीं क्योंकि सेवाश्रम को काफी चंदा मिलता था लेकिन दान-वृत्ति की कल्पना ही से उनके आत्माभिमान को चोट लगती थी।

लेकिन पत्र लिखे चार दिन हो गए, कोई जवाब नहीं। अब डॉक्टर साहब के सिर पर एक बोझ-सा सवार हो गया। दिन-भर डाकिए की राह देखा करते पर कोई खबर नहीं। यह बात क्या है- क्या अमर कहीं दूसरी जगह तो नहीं चला गया- सलीम ने पता तो गलत नहीं बता दिया- हरिद्वार से तीसरे दिन जवाब आना चाहिए। उसके आठ दिन हो गए। कितनी ताकीद कर दी थी कि तुरंत जवाब लिखना। कहीं बीमार तो नहीं हो गया- दूसरा पत्र लिखने का साहस न होता था। पूरे दस पन्ने कौन लिखे- वह पत्र भी कुछ ऐसा-वैसा पत्र न था। शहर का साल-भर का इतिहास था। वैसा पत्र फिर न बनेगा। पूरे तीन घंटे लगे थे। इधर आठ दिन से सलीम नहीं आया। वह तो अब दूसरी दुनिया में है। अपने आई. सी. एस. की धुन में है। यहां क्यों आने लगा- मुझे देखकर शायद आंखें चुराने लगे। स्वार्थ भी ईश्वर ने क्या चीज पैदा की है- कहां तो नौकरी के नाम से घृणा थी। नौजवान सभा के भी मेंबर, कांग्रेस के भी मेंबर। जहां देखिए, मौजूद। और मामूली मेंबर नहीं, प्रमुख भाग लेने वाला। कहां अब आई. सी. एस. की पड़ी हुई है- बच्चा पास तो क्या होंगे, वहां धोखा-धाड़ी नहीं चलने की मगर नामिनेशन तो हो ही जाएगा। हाफिजजी पूरा जोर लगाएंगे एक इम्तिहान में भी तो पास न हो सकता था। कहीं परचे उड़ाए, कहीं नकल की, कहीं रिश्त दी, पक्का शोहदा है। और ऐसे लोग आई. सी. एस. होंगे।

सहसा सलीम की मोटर आई, और सलीम ने उतरकर हाथ मिलाते हुए कहा-अब तो आप अच्छे मालूम होते हैं। चलने-फिरने में दिक्कत तो नहीं होती-

शान्तिकुमार ने शिकवे के अंदाज से कहा-मुझे दिक्कत होती है या नहीं होती तुम्हें इससे मतलब महीने भर के बाद तुम्हारी सूरत नजर आई है। तुम्हें क्या फिक्र कि मैं मरा या जीता हूं- मुसीबत में कौन साथ देता है तुमने कोई नई बात नहीं की।

'नहीं डॉक्टर साहब, आजकल इम्तिहान के झंझट में पड़ा हुआ हूं, मुझे तो इससे नफरत है। खुदा जानता है, नौकरी से मेरी देह कांपती है लेकिन करूं क्या, अब्बाजान हाथ धोकर पीछे पड़े हुए हैं। वह तो आप जानते ही हैं, मैं एक सीधा जुमला ठीक नहीं लिख सकता मगर लियाकत कौन देखता है- यहां तो सनद देखी जाती है। जो अफसरों का रुख देखकर काम कर सकता है, उसके लायक होने में शुबहा नहीं। आजकल यही फन सीख रहा हूं।'

शान्तिकुमार ने मुस्कराकर कहा-मुबारक हो लेकिन आई. सी. एस. की सनद आसान नहीं है।

सलीम ने कुछ इस भाव से कहा, जिससे टपक रहा था, आप इन बातों को क्या जानें- जी हां, लेकिन सलीम भी इस फन में उस्ताद है। बी. ए तक तो बच्चों का खेल था। आई. सी. एस. में ही मेरे कमाल का इम्तिहान होगा। सबसे नीचे मेरा नाम गजट में न निकले, तो मुंह न दिखाऊं। चाहूं तो सबसे ऊपर भी आ सकता हूं, मगर फायदा क्या- रुपये तो बराबर ही मिलेंगे।

शान्तिकुमार ने पूछा-तो तुम भी गरीबों का खून चूसोगे क्या-

सलीम ने निर्लज्जता से कहा-गरीबों के खून पर तो अपनी परवरिश हुई। अब और क्या कर सकता हूं- यहां तो जिस

दिन पढ़ने बैठे, उसी दिन से मुर्तिखोरी की धुन समाई लेकिन आपसे सच कहता हूं डॉक्टर साहब, मेरी तबीयत उस तरफ नहीं है कुछ दिनों मुलाजमत करने के बाद मैं भी देहात की तरफ चलूंगा। गाएं-भैंसे पालूंगा, कुछ फल-फल पैदा करूंगा, पसीने की कमाई खाऊंगा। मालूम होगा, मैं भी आदमी हूं। अभी तो खटमलों की तरह दूसरों के खून पर ही जिंदगी कटेगी लेकिन मैं कितना ही गिर जाऊं, मेरी हमदर्दी गरीबों के साथ रहेगी। मैं दिखा दूंगा कि अफसरी करके भी पब्लिक की खिदमत की जा सकती है। हम लोग खानदानी किसान हैं। अब्बाजान ने अपने ही बूते से यह दौलत पैदा की। मुझे जितनी मुहब्बत रियाया से हो सकती है, उतनी उन लोगों को नहीं हो सकती, जो खानदानी रईस हैं। मैं तो कभी अपने गांवों में जाता हूं, तो मुझे ऐसा मालूम होता है कि यह लोग मेरे अपने हैं। उनकी सादगी और मशक्कत देखकर दिल में उनकी इज्जत होती है। न जाने कैसे लोग उन्हें गालियां देते हैं, उन पर जुल्म करते हैं- मेरा बस चले, तो बदमाश अफसरों को कालेपानी भेज दूं।

शान्तिकुमार को ऐसा जान पड़ा कि अफसरी का जहर अभी इस युवक के खून में नहीं पहुंचा। इसका हृदय अभी तक स्वस्थ है। बोले-जब तक रियाया के हाथ में अख्तियार न होगा, अफसरों की यही हालत रहेगी। तुम्हारी जबान से यह खयालात सुनकर मुझे सच्ची खुशी हो रही है। मुझे तो एक भी भला आदमी कहीं नजर नहीं आता। गरीबों की लाश पर सब-के-सब गिददों की तरह जमा होकर उसकी बोटियां नोच रहे हैं, मगर अपने वश की बात नहीं। इसी खयाल से दिल को तस्कीन देना पड़ता है कि जब खुदा की मरजी होगी, तो आप ही वैसे सामान हो जाएंगे। इस हाहाकार को बुझाने के लिए दो-चार घड़े पानी डालने से तो आग और भी बढ़ेगी। इंकलाब की जरूरत है, पूरे इंकलाब की। इसलिए तो जले जितना जी चाहे, साफ हो जाय। जब कुछ जलने को बाकी न रहेगा, तो आग आप ठंडी हो जायगी। तब तक हम भी हाथ सेंकते हैं। कुछ अमर की भी खबर है- मैंने एक खत भेजा था, कोई जवाब नहीं आया।

सलीम ने चौंककर जेब में हाथ-डाला और एक खत निकालता हुआ बोला-लाहौल बिलाकूवत इस खत की याद ही न रही। आज चार दिन से आया हुआ है, जेब ही में पड़ा रह गया। रोज सोचता था और रोज भूल जाता था।

शान्तिकुमार ने जल्दी से हाथ बढ़ाकर खत ले लिया, और मीठे क्रोध के दो-चार शब्द कहकर पत्र पढ़ने लगे-

"भाई साहब, मैं जिंदा हूं और आपका मिशन यथाशक्ति पूरा कर रहा हूं। वहां के समाचार कुछ तो नैना के पत्रों से मुझे मिलते ही रहते थे किंतु आपका पत्र पढ़कर तो मैं चकित रह गया। इन थोड़े से दिनों में तो वहां क्रांति-सी हो गई मैं तो इस सारी जागृति का श्रेय आपको देता हूं। और सुखदा तो अब मेरे लिए पूज्य हो गई है। मैंने उसे समझने में कितनी भयंकर भूल की, यह याद करके मैं विकल हो जाता हूं। मैंने उसे क्या समझा था और वह क्या निकली- मैं अपने सारे दर्शन और विवेक और उत्सर्ग से वह कुछ न कर सका, जो उसने एक क्षण में कर दिखाया। कभी गर्व से सिर उठा लेता हूं, कभी लज्जा से सिर झुका लेता हूं। हम अपने निकटतम प्राणियों के विषय में कितने अज्ञ हैं, इसका अनुभव करके मैं रो उठता हूं। कितना महान् अज्ञान है- मैं क्या स्वप्न में भी सोच सकता था कि विलासिनी सुखदा का जीवन इतना त्यागमय हो जायेगा- मुझे इस अज्ञान ने कहीं का न रखा। जी में आता है, आकर सुखदा से अपने अपराध की क्षमा मांगूं पर कौन-सा मुंह लेकर आऊं- मेरे सामने अंधकार है। अभे? अंधकार है। कुछ नहीं सूझता। मेरा सारा आत्मविश्वास नष्ट हो गया है। ऐसा ज्ञात होता है, कोई अदेखी शक्ति मुझे खिला-खिलाकर कुचल डालना चाहती है। मैं मछली की भांति कांटे में फंसा हुआ हूं। कांटा मेरे कंठ में चुभ गया है। कोई हाथ मुझे खींच लेता है। खिंचा चला जाता हूं। फिर डोर ढीली हो जाती है और मैं भागता हूं। अब जान पड़ा कि मनुष्य विधि के हाथ का खिलौना है। इसलिए अब उसकी निर्दय क्रीड़ा की शिकायत नहीं करूंगा। कहां हूं, कुछ नहीं जानता किधर जा रहा हूं, कुछ नहीं

जानता। अब जीवन में कोई भविष्य नहीं है। भविष्य पर विश्वास नहीं रहा। इरादे झूठे साबित हुए, कल्पनाएं मिथ्या निकलीं। मैं आपसे सत्य कहता हूं, सुखदा मुझे नचा रही है। उस मायाविनी के हाथों मैं कठपुतली बना हुआ हूं। पहले एक रूप दिखाकर उसने मुझे भयभीत कर दिया और अब दूसरा रूप दिखाकर मुझे परास्त कर रही है। कौन उसका वास्तविक रूप है, नहीं जानता। सकीना का जो रूप देखा था, वह भी उसका सच्चा रूप था, नहीं कह सकता। मैं अपने ही विषय में कुछ नहीं जानता। आज क्या हूं कल क्या हो जाऊंगा, कुछ नहीं जानता। अतीत दुःखदायी है, भविष्य स्वप्न है। मेरे लिए केवल वर्तमान है।

'आपने अपने विषय में मुसझें जो सलाह पूछी है, उसका मैं क्या जवाब दूं- आप मुझसे कहीं बुद्धिमान हैं। मेरा विचार तो है कि सेवा-व्रतधारियों को जाति से गुजारा-केवल गुजारा लेने का अधिकार है। यदि वह स्वार्थ को मिटा सकें तो और भी अच्छा।'

शान्तिकुमार ने असंतोष के भाव से पत्र को मेज पर रख दिया। जिस विषय पर उन्होंने विशेष रूप से राय पूछी थी, उसे केवल दो शब्दों में उड़ा दिया।

सहसा उन्होंने सलीम से पूछा-तुम्हारे पास भी कोई खत आया है-

'जी हां, इसके साथ ही आया था।'

'कुछ मेरे बारे में लिखा था?'

'कोई खास बात तो न थी, बस यही कि मुल्क को सच्चे मिशनरियों की जरूरत है और खुदा जाने क्या-क्या- मैंने खत को आखिर तक पढ़ा भी नहीं। इस किस्म की बातों को मैं पागलपन समझता हूं। मिशनरी होने का मतलब तो मैं यही समझता हूं कि हमारी जिंदगी खैरात पर बसर हो।'

डॉक्टर साहब ने गंभीर स्वर में कहा-जिंदगी का खैरात पर बसर होना इससे कहीं अच्छा है कि सब्र पर बसर हो। गवर्नमेंट तो कोई जरूरी चीज नहीं। पढ़े-लिखे आदमियों ने गरीबों को दबाए रखने के लिए एक संगठन बना लिया है। उसी का नाम गवर्नमेंट है। गरीब और अमीर का फर्क मिटा दो और गवर्नमेंट का खातमा हो जाता है।

'आप तो खयाली बातें कर रहे हैं। गवर्नमेंट की जरूरत उस वक्त न रहेगी, जब दुनिया में फरिश्ते आबाद होंगे।'

आइडियल (आदर्श) को हमेशा सामने रखने की जरूरत है।'

'लेकिन तालीम का सीफा विभाग तो सब्र करने का सीफा नहीं है। फिर जब आप अपनी आमदनी का बड़ा हिस्सा सेवाश्रम में खर्च करते हैं, तो कोई वजह नहीं कि आप मुलाजिमत छोड़कर संन्यासी बन जायें।'

यह दलील डॉक्टर के मन में बैठ गई। उन्हें अपने मन को समझाने का एक साधन मिल गया। बेशक शिक्षा-विभाग का शासन से संबंध नहीं। गवर्नमेंट जितनी ही अच्छी होगी, उसका शिक्षाकार्य और भी विस्तृत होगा। तब इस सेवाश्रम की भी क्या जरूरत होगी- संगठित रूप से सेवा धर्म का पालन करते हुए, शिक्षा का प्रचार करना किसी दशा में भी आपत्ति की बात नहीं हो सकती। महीनों से जो प्रश्न डॉक्टर साहब को बेचैन कर रहा था, आज हल हो गया।

सलीम को बिदा करके वह लाला समरकान्त के घर चले। समरकान्त को अमर का पत्र दिखाकर सुखई बनना चाहते थे। जो समस्या अभी वह हल कर चुके थे, उसके विषय में फिर कुछ संदेह उत्पन्न हो रहे थे। उन संदेहों को शांत करना भी आवश्यक था। समरकान्त तो कुछ खुलकर उनसे न मिले। सुखदा ने उनको खबर पाते ही बुला लिया।

रेणुका बाई भी आई हुई थीं।

शान्तिकुमार ने जाते-ही-जाते अमरकान्त का पत्र निकालकर सुखदा के सामने रख दिया और बोले-सलीम ने चार दिनों से अपनी जेब में डाल रखा था और मैं घबरा रहा था कि बात क्या है-

सुखदा ने पत्र को उड़ती हुई आंखों से देखकर कहा-तो मैं इसे लेकर क्या करूं-

शान्तिकुमार ने विस्मित होकर कहा-जरा एक बार इसे पढ़ तो जाइए। इससे आपके मन की बहुत-सी शंकाएं मिट जाएंगी।

सुखदा ने रूखेपन के साथ जवाब दिया-मेरे मन में किसी की तरफ से कोई शंका नहीं है। इस पत्र में भी जो कुछ लिखा होगा, वह मैं जानती हूं। मेरी खूब तारीफें की गई होंगी। मुझे तारीफ की जरूरत नहीं। जैसे किसी को क्रोध आ जाता है, उसी तरह मुझे वह आवेश आ गया। यह भी क्रोध के सिवा और कुछ न था। क्रोध की कोई तारीफ नहीं करता।

'यह आपने कैसे समझ लिया कि इसमें आपकी तारीफ की है?'

'हो सकता है, खेद भी प्रकट किया हो।'

'तो फिर आप और चाहती क्या हैं?'

'अगर आप इतना भी नहीं समझ सकते, तो मेरा कहना व्यर्थ है।'

रेणुका बाई अब तक चुप बैठी थीं। सुखदा का संकोच देखकर बोलीं-जब वह अब तक घर लौटकर नहीं आए, तो कैसे मालूम हो कि उनके मन के भाव बदल गए हैं। अगर सुखदा उनकी स्त्री न होती, तब भी तो उसकी तारीफ करते। नतीजा क्या हुआ। जब स्त्री-पुरुष सुख से रहें, तभी तो मालूम हो कि उनमें प्रेम है। प्रेम को छोड़िए। प्रेम तो बिरले ही दिलों में होता है। धर्म का निबाह तो करना ही चाहिए। पति हजार कोस पर बैठा हुआ स्त्री की बड़ाई करे। स्त्री हजार कोस पर बैठी हुई मियां की तारीफ करे, इससे क्या होता है-

सुखदा खीझकर बोली-आप तो अम्मां बेबात की बात करती हैं। जीवन तब सुखी हो सकता है, जब मन का आदमी मिले। उन्हें मुझसे अच्छी एक वस्तु मिल गई। वह उसके वियोग में भी मगन हैं। मुझे उनसे अच्छा अभी कोई नहीं मिला, और न इस जीवन में मिलेगा, यह मेरा दुर्भाग्य है। इसमें किसी का दोष नहीं।

रेणुका ने डॉक्टर साहब की ओर देखकर कहा-सुना आपने, बाबूजी- यह मुझे इसी तरह रोज जलाया करती है। कितनी बार कहा है कि चल हम दोनों उसे वहां से पकड़ लाएं। देखें, कैसे नहीं आता- जवानी की उम्र में थोड़ी-बहुत नादानी सभी करते हैं मगर यह न खुद मेरे साथ चलती है, न मुझे अकेले जाने देती है। भैया, एक दिन भी ऐसा नहीं जाता कि बगैर रोए मुंह में अन्न जाता हो। तुम क्यों नहीं चले जाते, भैया- तुम उसके गुरु हो, तुम्हारा अदब करता है। तुम्हारा कहना वह नहीं टाल सकता।

सुखदा ने मुस्कराकर कहा-हां, यह तो तुम्हारे कहने से आज ही चले जाएंगे। यह तो और खुश होते होंगे कि शिष्यों में एक तो ऐसा निकला, जो इनके आदर्श का पालन कर रहा है। विवाह को यह लोग समाज का कलंक समझते हैं। इनके पंथ में पहले किसी को विवाह करना ही न चाहिए, और अगर दिल न माने तो किसी को रख लेना चाहिए। इनके दूसरे शिष्य मियां सलीम हैं। हमारे बाबू साहब तो न जाने किस दबाव में पड़कर विवाह कर बैठे। अब उसका

प्रायश्चित्त कर रहे हैं।

शान्तिकुमार ने झंपते हुए कहा-देवीजी, आप मुझ पर मिथ्या आरोप कर रही हैं। अपने विषय में मैंने अवश्य यही निश्चय किया है कि एकांत जीवन व्यतीत करूंगा इसलिए कि आदि से ही सेवा का आदर्श मेरे सामने था।

सुखदा ने पूछा-क्या विवाहित जीवन में सेवा-धर्म का पालन असंभव है- या स्त्री इतनी स्वाथाऊधा होती है कि आपके कामों में बाधा डाले बिना रह ही नहीं सकती- गृहस्थ जितनी सेवा कर सकता है, उतनी एकांत जीवी कभी नहीं कर सकता क्योंकि वह जीवन के कष्टों का अनुभव नहीं कर सकता।

शान्तिकुमार ने विवाद से बचने की चेष्टा करके कहा-यह तो झगड़े का विषय है देवीजी, और तय नहीं हो सकता। मुझे आपसे एक विषय में सलाह लेनी है। आपकी माताजी भी हैं, यह और भी शुभ है। मैं सोच रहा हूं, क्यों न नौकरी से इस्तीफा देकर सेवाश्रम का काम करूं-

सुखदा ने इस भाव से कहा, मानो यह प्रश्न करने की बात ही नहीं-अगर आप सोचते हैं, आप बिना किसी के सामने हाथ फैलाए अपना निर्वाह कर सकते हैं, तो जरूर इस्तीफा दे दीजिए, यों तो काम करने वाले का भार संस्था पर होता है लेकिन इससे भी अच्छी बात यह है कि उसकी सेवा में स्वार्थ का लेश भी न हो।

शान्तिकुमार ने जिस तर्क से अपना चित्त शांत किया था, वह यहां फिर जवाब दे गया। फिर उसी उधोड़बुन में पड़ गए।

सहसा रेणुका ने कहा-आपके आश्रम में कोई कोष भी है-

आश्रम में अब तक कोई कोष न था। चंदा इतना न मिलता था कि कुछ बचत हो सकती। शान्तिकुमार ने इस अभाव को मानो अपने ऊपर लांछन समझकर कहा-जी नहीं, अभी तक तो कोष नहीं बना सका, पर मैं यूनिवर्सिटी से छुट्टी पा जाऊं, तो इसके लिए उद्योग करूं।

रेणुका ने पूछा-कितने रुपये हों, तो आपका आश्रम चलने लगे-

शान्तिकुमार ने आशा की स्थिति का अनुभव करके कहा-आश्रम तो एक यूनिवर्सिटी भी बन सकता है लेकिन मुझे तीन-चार लाख रुपये मिल जाएं, तो मैं उतना ही काम कर सकता हूं, जितना यूनिवर्सिटी में बीस लाख में भी नहीं हो सकता।

रेणुका ने मुस्कराकर कहा-अगर आप कोई ट्रस्ट बना सकें, तो मैं आपकी कुछ सहायता कर सकती हूं। बात यह है कि जिस संपत्ति को अब तक संचाली आती थी, उसका अब कोई भोगने वाला नहीं है। अमर का हाल आप देख ही चुके। सुखदा भी उसी रास्ते पर जा रही है। तो फिर मैं भी अपने लिए कोई रास्ता निकालना चाहती हूं। मुझे आप गुजारे के लिए सौ रुपये महीने ट्रस्ट से दिला दीजिएगा। मेरे जानवरों के खिलाने-पिलाने का भार ट्रस्ट पर होगा।

शान्तिकुमार ने डरते-डरते कहा-मैं तो आपकी आज्ञा तभी स्वीकार कर सकता हूं, जब अमर और सुखदा मुझे सहर्ष अनुमति दें। फिर बच्चे का हक भी तो है-

सुखदा ने कहा-मेरी तरफ से इस्तीफा है। और बच्चे के दादा का धन क्या थोड़ा है- औरों की मैं नहीं कह सकती।

रेणुका खिन्न होकर बोलीं-अमर को धन की परवाह अगर है, तो औरों से भी कम। दौलत कोई दीपक तो है नहीं,

जिससे प्रकाश फैलता रहे। जिन्हें उसकी जरूरत नहीं उनके गले क्यों लगाई जाए- रुपये का भार कुछ कम नहीं होता। मैं खुद नहीं संभाल सकती। किसी शुभ कार्य में लग जाय, वह कहीं अच्छा। लाला समरकान्त तो मंदिर और शिवाले की राय देते हैं पर मेरा जी उधर नहीं जाता, मंदिर तो यों ही इतने हो रहे हैं कि पूजा करने वाले नहीं मिलते। शिक्षादान महादान है और वह भी उन लोगों में, जिनका समाज ने हमेशा बहिष्कार किया हो। मैं कई दिन से सोच रही हूं, और आपसे मिलने वाली थी। अभी मैं दो-चार महीने और दुविधा में पड़ी रहती पर आपके आ जाने से मेरी दुविधाएं मिट गईं। धन देने वालों की कमी नहीं है, लेने वालों की कमी है। आदमी यही चाहता है कि धन सुपात्रों को दे, जो दाता के इच्छानुसार खर्च करें यह नहीं कि मुर्ति का धन पाकर उड़ाना शुरू कर दें। दिखाने को दाता की इच्छानुसार थोड़ा-बहुत खर्च कर दिया, बाकी किसी-न-किसी बहाने से घर में रख लिया।

यह कहते हुए उसने मुस्कराकर शान्तिकुमार से पूछा-आप तो धोखा न देंगे-

शान्तिकुमार को यह प्रश्न, हंसकर पूछे जाने पर भी बुरा मालूम हुआ-मेरी नीयत क्या होगी, यह मैं खुद नहीं जानता-आपको मुझ पर इतना विश्वास कर लेने का कोई कारण भी नहीं है।

सुखदा ने बात संभाली-यह बात नहीं है, डॉक्टर साहब अम्मां ने हंसी की थी।

'विष माधुर्य के साथ भी अपना असर करता है।'

'यह तो बुरा मानने की बात न थी?'

'मैं बुरा नहीं मानता। अभी दस-पांच वर्ष मेरी परीक्षा होने दीजिए। अभी मैं इतने बड़े विश्वास के योग्य नहीं हुआ।'

रेणुका ने परास्त होकर कहा-अच्छा साहब, मैं अपना प्रश्न वापस लेती हूं। आप कल मेरे घर आइएगा। मैं मोटर भेज दूंगी। ट्रस्ट बनाना पहला काम है। मुझे अब कुछ नहीं पूछना है आपके ऊपर मुझे पूरा विश्वास है।

डॉक्टर साहब ने धन्यवाद देते हुए कहा-मैं आपके विश्वास को बनाए रखने की चेष्टा करूंगा।

रेणुका बोलीं-मैं चाहती हूं जल्दी ही इस काम को कर डालूं। फिर नैना का विवाह आ पड़ेगा, तो महीनों फुर्सत न मिलेगी।

शान्तिकुमार ने जैसे सिहरकर कहा-अच्छा, नैना देवी का विवाह होने वाला है- यह तो बड़ी शुभ सूचना है। मैं कल ही आपसे मिलकर सारी बातें तय कर लूंगा। अमर को भी सूचना दे दूं-

सुखदा ने कठोर स्वर में कहा-कोई जरूरत नहीं-

रेणुका बोलीं-नहीं, आप उनको सूचना दे दीजिएगा। शायद आएंगे। मुझे तो आशा है जरूर आएंगे।

डॉक्टर साहब यहां से चले, तो नैना बालक को लिए मोटर से उतर रही थी।

शान्तिकुमार ने आहत कंठ से कहा-तुम अब चली जाओगी, नैना-

नैना ने सिर झुका लिया पर उसकी आंखें सजल थीं।

आठ

छः महीने गुजर गए।

सेवाश्रम का ट्रस्ट बन गया। केवल स्वामी आत्मानन्दजी ने, जो आश्रम के प्रमुख कार्यकर्तव्य और एक-एक पोर समष्टिवादी थे, इस प्रबंध से असंतुष्ट होकर इस्तीफा दे दिया। वह आश्रम में धनिकों को नहीं घुसने देना चाहते थे। उन्होंने बहुत जोर मारा कि ट्रस्ट न बनने पाए। उनकी राय में धन पर आश्रम की आत्मा को बेचना, आश्रम के लिए घातक होगा। धन ही की प्रभुता से तो हिन्दू-समाज ने नीचों को अपना गुलाम बना रखा है, धन ही के कारण तो नीच-ऊंच का भेद आ गया है उसी धन पर आश्रम की स्वाधीनता क्यों बेची जाए लेकिन स्वामीजी की कुछ न चली और ट्रस्ट की स्थापना हो गई। उसका शिलान्यास रखा सुखदा ने। जलसा हुआ, दावत हुई, गाना-बजाना हुआ। दूसरे दिन शान्तिकुमार ने अपने पद से इस्तीफा दे दिया।

सलीम की परीक्षा भी समाप्त हो गई। और उसने पेशीनगोई की थी, वह अक्षरशः पूरी हुई। गजट में उसका नाम सबसे नीचे था। शान्तिकुमार के विस्मय की सीमा न रही। अब उसे कायदे के मुताबिक दो साल के लिए इंग्लैंड जाना चाहिए था पर सलीम इंग्लैंड न जाना चाहता था। दो-चार महीने के लिए सैर करने तो वह शौक से जा सकता था, पर दो साल तक वहां पड़े रहना उसे मंजूर न था। उसे जगह न मिलनी चाहिए थी, मगर यहां भी उसने कुछ ऐसी दौड़-धूप की, कुछ ऐसे हथकंडे खेले कि वह इस कायदे से मुस्तसना कर दिया गया। जब सूबे का सबसे बड़ा डॉक्टर कह रहा है कि इंग्लैंड की ठंडी हवा में इस युवक का दो साल रहना खतरे से खाली नहीं, तो फिर कौन इतनी बड़ी जिम्मेदारी लेता- हाफिज हलीम लड़के को भेजने को तैयार थे, रुपये खर्च को करने तैयार थे, लेकिन लड़के का स्वास्थ्य बिगड़ गया, तो वह किसका दामन पकड़ेंगे- आखिर यहां भी सलीम की विजय रही। उसे उसी हलके का चार्ज भी मिला, जहां उसका दोस्त अमरकान्त पहले ही से मौजूद था। उस जिले को उसने खुद पसंद किया।

इधर सलीम के जीवन में एक बड़ा परिवर्तन हो गया। हंसोड़ तो उतना ही था पर उतना शौकीन, उतना रसिक न था। शायरी से भी अब उतना प्रेम न था। विवाह से उसे जो पुरानी अरुचि थी, वह अब बिलकुल जाती रही थी। यह परिवर्तन एकाएक कैसे हो गया, हम नहीं जानते लेकिन इधर वह कई बार सकीना के घर गया था और दोनों में गुप्त रूप से पत्र व्यवहार भी हो रहा था। अमर के उदासीन हो जाने पर भी सकीना उसके अतीत प्रेम को कितनी एकाग्रता से हृदय में पाले हुए थी, इस अनुराग ने सलीम को परास्त कर दिया था। इस ज्योति से अब वह अपने जीवन को आलोकित करने के लिए विकल हो रहा था। अपनी मामा से सकीना के उस अपार प्रेम का वृत्तांत सुन-सुनकर वह बहुधा रो दिया करता। उसका कवि-हृदय जो भ्रमर की भांति नए-नए पुष्पों के रस लिया करता था, अब संयमित अनुराग से परिपूर्ण होकर उसके जीवन में एक विशाल साधाना की सृष्टि कर रहा था।

नैना का विवाह भी हो गया। लाला धानीराम नगर के सबसे धानी आदमी थे। उनके ज्येष्ठ पुत्र मनीराम बड़े होनहार नौजवान थे। समरकान्त को तो आशा न थी कि यहां संबंध हो सकेगा क्योंकि धानीराम मंदिर वाली घटना के दिन से ही इस परिवार को हेय समझने लगे थे पर समरकान्त की थैलियों ने अंत में विजय पाई। बड़ी-बड़ी तैयारियां हुईं लेकिन अमरकान्त न आया, और न समरकान्त ने उसे बुलाया। धानीराम ने कहला दिया था कि अमरकान्त विवाह में सम्मिलित हुआ तो बारात लौट आएगी। यह बात अमरकान्त के कानों तक पहुंच गई थी। नैना न प्रसन्न थी, न दुःखी थी। वह न कुछ कह सकती थी, न बोल सकती थी। पिता की इच्छा के सामने वह क्या कहती। मनीराम के विषय में तरह-तरह की बातें सुनती थी-शराबी है, व्यभिचारी है, मूर्ख है, घमंडी है लेकिन पिता की इच्छा के सामने सिर झुकाना उसका कर्तव्य था। अगर समरकान्त उसे किसी देवता की बलिवेदी पर चढ़ा देते, तब भी वह मुंह न खोलती। केवल विदाई के समय वह रोई पर उस समय भी उसे यह ध्यान रहा कि पिताजी को दुःख न हो।

समरकान्त की आंखों में धन ही सबसे मूल्यवान वस्तु थी। नैना को जीवन का क्या अनुभव था- ऐसे महत्त्व के विषय में पिता का निश्चय ही उसके लिए मान्य था। उसका चित्त सशंक था पर उसने जो कुछ अपना कर्तव्य समझ रखा था उसका पालन करते हुए उसके प्राण भी चले जाएं तो उसे दुःख न होगा।

इधर सुखदा और शान्तिकुमार का सहयोग दिन-दिन घनिष्ठ होता जाता था। धन का अभाव तो था नहीं, हरेक मुहल्ले में सेवाश्रम की शाखाएं खुल रही थीं और मादक वस्तुओं का बहिष्कार भी जोरों से हो रहा था। सुखदा के जीवन में अब एक कठोर तप का संचार होता जाता था। वह अब प्रातःकाल और संध्या व्यायाम करती। भोजन में स्वाद से अधिक पोषकता का विचार रखती। संयम और निग्रह ही अब उसकी जीवनचर्या के प्रधान अंग थे। उपन्यासों की अपेक्षा अब उसे इतिहास और दार्शनिक विषयों में अधिक आनंद आता था, और उसकी बोलने की शक्ति तो इतनी बढ़ गई थी कि सुनने वालों को आश्चर्य होता था। देश और समाज की दशा देखकर उसमें सच्ची वेदना होती थी और यही वाणी में प्रभाव का मुख्य रहस्य है। इस सुधार के प्रोग्राम में एक बात और आ गई थी। वह थी गरीबों के लिए मकानों की समस्या। अब यह अनुभव हो रहा था कि जब तक जनता के लिए मकानों की समस्या हल न होगी, सुधार का कोई प्रस्ताव सफल न होगा मगर यह काम चंदे का नहीं, इसे तो म्युनिसिपैलिटी ही हाथ में ले सकती थी। पर यह संस्था इतना बड़ा काम हाथ में लेते हुए भी घबराती थी। हाफिज हलीम प्रधान थे, लाला धानीराम उप-प्रधान ऐसे दकिया-नूसीमहानुभावों के मस्तिष्क में इस समस्या की आवश्यकता और महत्त्व को जमा देना कठिन था। दो-चार ऐसे सज्जन तो निकल आए थे, जो जमीन मिल जाने पर दो-चार लाख रुपये लगाने को तैयार थे। उनमें लाला समरकान्त भी थे। अगर चार आने सैकड़े का सूद भी निकलता आए, तो वह संतुष्ट थे, मगर प्रश्न था जमीन कहां से आए- सुखदा का कहना था कि जब मिलों के लिए, स्कूलों और कॉलेजों के लिए जमीन का प्रबंध हो सकता है, तो इस काम के लिए क्यों न म्युनिसिपैलिटी मुर्ति जमीन दे-

संध्या का समय था। शान्तिकुमार नक्शों का एक पुलिंदा लिए हुए सुखदा के पास आए और एक-एक नक्शा खोलकर दिखाने लगे। यह उन मकानों के नक्शे थे, जो बनवाए जाएंगे। एक नक्शा आठ आने महीने के मकान का था दूसरा एक रुपये के किराए का और तीसरा दो रुपये का। आठ आने वालों में एक कमरा था, एक रसोई, एक बरामदा, सामने एक बैठक और छोटा-सा सहन। एक रुपया वालों में भीतर दो कमरे थे और दो रुपये वालों में तीन कमरे।

कमरों में खिड़कियां थीं, फर्श और दो फीट ऊंचाई तक दीवारें पक्की। ठाठ खपरैल का था।

दो रुपये वालों में शौच-गृह भी थे। बाकी दस-दस घरों के बीच में एक शौच-गृह बनाया गया था।

सुखदा ने पूछा-आपने लागत का तखमीना भी किया है-

'और क्या यों ही नक्शे बनवा लिए हैं आठ आने वाले घरों की लागत दो सौ होगी, एक रुपये वालों की तीन सौ और दो रुपये वालों की चार सौ। चार आने का सूद पड़ता है।'

'पहले कितने मकानों का प्रोग्राम है?'

'कम-से-कम तीन हजार। दक्षिण तरफ लगभग इतने ही मकानों की जरूरत होगी। मैं हिसाब लगा लिया है। कुछ लोग तो जमीन मिलने पर रुपये लगाएंगे मगर कम-से-कम दस लाख की जरूरत और होगी।'

'मार डाला दस लाख एक तरफ के लिए।'

'अगर पांच लाख के हिस्सेदार मिल जाएं, तो बाकी रुपये जनता खुद लगा देगी, मजदूरी में बड़ी क़िफ़ायत होगी। राज, बेलदार, बढ़ई, लोहार आधी मजदूरी पर काम करने को तैयार हैं। ठेके वाले, गधो वाले, गाड़ी वाले, यहां तक कि इक्के और तांगे वाले भी बेगार काम करने पर राजी हैं।'

'देखिए, शायद चल जाए। दो-तीन लाख शायद दादाजी लगा दें, अम्मा के पास भी अभी कुछ-न-कुछ होगा ही बाकी रुपये की फ़िक्र करनी है। सबसे बड़ी ज़मीन की मुश्किल है।'

'मुश्किल क्या है- दस बंगले गिरा दिए जाएं तो ज़मीन-ही-ज़मीन निकल आएगी।'

'बंगलों का गिराना आप आसान समझते हैं?'

'आसान तो नहीं समझता लेकिन उपाय क्या है- शहर के बाहर तो कोई रहेगा नहीं। इसलिए शहर के अंदर ही ज़मीन निकालनी पड़ेगी। बाज मकान इतने लंबे-चौड़े हैं कि उनमें एक हजार आदमी फैलकर रह सकते हैं। आप ही का मकान क्या छोटा है- इसमें दस गरीब परिवार बड़े मजे में रह सकते हैं।'

सुखदा मुस्काई-आप तो हम लोगों पर ही हाथ साफ करना चाहते हैं।

'जो राह बताए उसे आगे चलना पड़ेगा।'

'मैं तैयार हूं लेकिन म्युनिसिपैलिटी के पास कुछ प्लॉट तो खाली होंगे?'

'हां, हैं क्यों नहीं- मैंने उन सबों का पता लगा लिया है मगर हाफिज़जी फरमाते हैं, उन प्लॉटों की बातचीत तय हो चुकी है।'

सलीम ने मोटर से उतरकर शान्तिकुमार को पुकारा। उन्होंने उसे अंदर बुला लिया और पूछा-किधर से आ रहे हो- सलीम ने प्रसन्न मुख से कहा-कल रात को चला जाऊंगा। सोचा, आपसे रूखसत होता चलूं। इसी बहाने देवीजी से भी नियाज़ हासिल हो गया।

शान्तिकुमार ने पूछा-अरे तो यों ही चले जाओगे, भाई- कोई जलसा, दावत, कुछ नहीं- वाह

'जलसा तो कल शाम को है। कार्ड तो आपके यहां भेज दिया था। मगर आपसे तो जलसे की मुलाकात काफी नहीं।'

'तो चलते-चलते हमारी थोड़ी-सी मदद करो दक्षिण तरफ म्युनिसिपैलिटी के जो प्लॉट हैं, वह हमें दिला दो मुर्ति में?'

सलीम का मुख गंभीर हो गया। बोला-उन प्लॉटों की तो शायद बातचीत हो चुकी है। कई मेंबर खुद बेटों और बीवियों के नाम खरीदने को मुंह खोले बैठे हैं।

सुखदा विस्मित हो गई-अच्छा भीतर-ही-भीतर यह कपट-लीला भी होती है। तब तो आपकी मदद की और ज़रूरत है। इस मायाजाल को तोड़ना आपका कर्तव्य है।

सलीम ने आंखें चुराकर कहा-अब्बाजान इस मुआमले में मेरी एक न सुनेंगे। और हक यह है कि जो मुआमला तय हो चुका, उसके बारे में कुछ जोर देना भी तो मुनासिब नहीं।

यह कहते हुए उसने सुखदा और शान्तिकुमार से हाथ मिलाया और दोनों से कल शाम के जलसे में आने का आग्रह करके चला गया। वहां बैठने में अब उसकी खैरियत न थी।

शान्तिकुमार ने कहा-देखा आपने अभी जगह पर गए नहीं पर मिजाज में अफसरी की बू आ गई। कुछ अजब तिलिस्म है कि जो उसमें कदम रखता है, उस पर जैसे नशा हो जाता है। इस तजवीज के यह पक्के समर्थक थे पर आज कैसा निकल गए- हाफिजजी से अगर जोर देकर कहें, तो मुमकिन नहीं कि वह राजी हो जाएं।

सुखदा ने मुख पर आत्मगौरव की झलक आ गई-हमें न्याय की लड़ाई लड़नी है। न्याय हमारी मदद करेगा। हम और किसी की मदद के मुहताज नहीं।

इसी समय लाला समरकान्त आ गए। शान्ति कुमार को बैठे देखकर जरा झिझके। फिर पूछा-कहिए डॉक्टर साहब, हाफिजजी से क्या बातचीत हुई-

शान्तिकुमार ने अब तक जो कुछ किया था, वह सब कह सुनाया।

समरकान्त ने असंतोष का भाव प्रकट करते हुए कहा-आप लोग विलायत के पढ़े हुए साहब, मैं भला आपके सामने क्या मुंह खोल सकता हूं, लेकिन आप जो चाहें कि न्याय और सत्य के नाम पर आपको जमीन मिल जाए, तो चुपके हो रहिए। इस काम के लिए दस-बीस हजार रुपये खर्च करने पड़ेंगे-हरेक मेंबर से अलग-अलग मिलिए। देखिए। किस मिजाज का, किस विचार का, किस रंग-ढंग का आदमी है। उसी तरह उसे काबू में लाइए-खुशामद से राजी हो तो खुशामद से, चांदी से राजी हो चांदी से, दुआ-तावीज, जंतर-मंतर जिस तरह काम निकले, उस तरह निकालिए। हाफिजजी से मेरी पुरानी मुलाकात है। पच्चीस हजार की थैली उनके मामा के हाथ घर में भेज दो, फिर देखें कैसे जमीन नहीं मिलती- सरदार कल्याणसिंह को नये मकानों का ठेका देने का वादा कर लो, वह काबू में आ जाएंगे। दुबेजी को पांच तोले चन्द्रोदय भेंट करके पटा सकते हो। खन्ना से योगाभ्यास की बातें करो और किसी संत से मिला दो ऐसा संत हो, जो उन्हें दो-चार आसन सिखा दे। राय साहब धानीराम के नाम पर अपने नए मुहल्ले का नाम रख दो, उनसे कुछ रुपये भी मिल जाएंगे। यह हैं काम करने का ढंग। रुपये की तरफ से निश्चित रहो। बनियों को चाहे बदनाम कर लो पर परमार्थ के काम में बनिये ही आगे आते हैं। दस लाख तक का बीमा तो मैं लेता हूं। कई भाइयों के तो वोट ले आया। मुझे तो रात को नींद नहीं आती। यही सोचा करता हूं कि कैसे यह काम सि' हो। जब तक काम सि' न हो जाएगा, मुझे ज्वर-सा चढ़ा रहेगा।

शान्तिकुमार ने दबी आवाज से कहा-यह फन तो मुझे अभी सीखना पड़ेगा, सेठजी। मुझे न रकम खाने का तजरबा है, न खिलाने का। मुझे तो किसी भले आदमी से यह प्रस्ताव करते शर्म आती है। यह खयाल भी आता है कि वह मुझे कितना खुदगरज समझ रहा होगा। डरता हूं, कहीं घुड़क न बैठे।

समरकान्त ने जैसे कुत्तो को दुत्कार कर कहा-तो फिर तुम्हें जमीन मिल चुकी। सेवाश्रम के लड़के पढ़ाना दूसरी बात है, मामले पटाना दूसरी बात है। मैं खुद पटाऊंगा।

सुखदा ने जैसे आहत होकर कहा-नहीं, हमें रिश्वत देना मंजूर नहीं। हम न्याय के लिए खड़े हैं, हमारे पास न्याय का बल है। हम उसी बल से विजय पाएंगे।

समरकान्त ने निराश होकर कहा-तो तुम्हारी स्कीम चल चुकी।

सुखदा ने कहा-स्कीम तो चलेगी हां, शायद देर में चले, या धीमी चाल से चले, पर रुक नहीं सकती। अन्याय के दिन पूरे हो गए।

'अच्छी बात है। मैं भी देखूंगा।'

समरकान्त झल्लाए हुए बाहर चले गए। उनकी सर्वज्ञता को जो स्वीकार न करे, उससे वह दूर भागते थे।

शान्तिकुमार ने खुश होकर कहा-सेठजी भी विचित्र जीव हैं इनकी निगाह में जो कुछ है, वह रुपया। मानवता भी कोई वस्तु है, इसे शायद यह मानें ही नहीं।

सुखदा की आंखें सगर्व हो गईं-इनकी बातों पर न जाइए, डॉक्टर साहब- इनके हृदय में जितनी दया, जितनी सेवा है, वह हम दोनों में मिलाकर भी न होगी। इनके स्वभाव में कितना अंतर हो गया है, इसे आप नहीं देखते- डेढ़ साल पहले बेटे ने इनसे यह प्रस्ताव किया होता, तो आग हो जाते। अपना सर्वस्व लुटाने को तैयार हो जाना साधारण बात नहीं है। और विशेषकर उस आदमी के लिए, जिसने एक-एक कौड़ी को दांतों से पकड़ा हो। पुत्र-स्नेह ही ने यह काया-पलट किया है। मैं इसी को सच्चा वैराग्य कहती हूं। आप पहले मेंबरों से मिलिए और जरूरत समझिए तो मुझे भी ले लीजिए। मुझे तो आशा है, हमें बहुमत मिलेगा। नहीं, आप अकेले न जाएं। कल सवेरे आइए तो हम दोनों चलें। दस बजे रात तक लौट आएं, इस वक्त मुझे जरा सकीना से मिलना है। सुना है महीनों से बीमार है। मुझे तो उस पर श्रद्धा-सी हो गई है। समय मिला, तो उधर से ही नैना से मिलती आऊंगी।

डॉक्टर साहब ने कुर्सी से उठते हुए कहा-उसे गए तो दो महीने हो गए, आएगी कब तक-

'यहां से तो कई बार बुलाया गया, सेठ धनीराम बिदा ही नहीं करते।'

'नैना खुश तो है?'

'मैं तो कई बार मिली पर अपने विषय में उसने कुछ न कहा। पूछा, तो यही बोली-मैं बहुत अच्छी तरह हूं। पर मुझे तो वह प्रसन्न नहीं दिखी। वह शिकायत करने वाली लड़की नहीं है। अगर वह लोग लातों से मारकर निकालना भी चाहें, तो घर से न निकलेगी, और न किसी से कुछ कहेगी।'

शान्तिकुमार की आंखें सजल हो गईं-उससे कोई अप्रसन्न हो सकता है, मैं तो इसकी कल्पना ही नहीं कर सकता।

सुखदा मुस्कराकर बोली-उसका भाई कुमार्गी है, क्या यह उन लोगों की अप्रसन्नता के लिए काफी नहीं है-

'मैंने तो सुना, मनीराम पक्का शोहदा है।'

'नैना के सामने आपने वह शब्द कहा होता, तो आपसे लड़ बैठती।'

'मैं एक बार मनीराम से मिलूंगा जरूर।'

'नहीं आपके हाथ जोड़ती हूं। आपने उनसे कुछ कहा, तो नैना के सिर जाएगी।'

'मैं उससे लड़ने नहीं जाऊंगा। मैं उसकी खुशामद करने जाऊंगा। यह कला जानता नहीं पर नैना के लिए अपनी आत्मा की हत्या करने में भी मुझे संकोच नहीं है। मैं उसे दुःखी नहीं देख सकता। निःस्वार्थ सेवा की देवी अगर मेरे सामने दुःख सहे, तो मेरे जीने को धिक्कार है।

शान्तिकुमार जल्दी से बाहर निकल आए। आंसुओं का वेग अब रोके न रूकता था।

नौ

सुखदा सड़क पर मोटर से उतरकर सकीना का घर खोजने लगी पर इधर से उधर तक दो-तीन चक्कर लगा आई, कहीं वह घर न मिला। जहां वह मकान होना चाहिए था, वहां अब एक नया कमरा था, जिस पर कलई पुती हुई थी। वह कच्ची दीवार और सड़ा हुआ टाट का परदा कहीं न था। आखिर उसने एक आदमी से पूछा, तब मालूम हुआ कि जिसे वह नया कमरा समझ रही थी, सकीना के मकान का दरवाजा है। उसने आवाज दी और एक क्षण में द्वार खुल गया। सुखदा ने देखा वह एक साफ सुथरा छोटा-सा कमरा है, जिसमें दो-तीन मोढ़े रखे हुए हैं। सकीना ने एक मोढ़े को बढ़ाकर पूछा-आपको मकान तलाश करना पड़ा होगा। यह नया कमरा बन जाने से पता नहीं चलता।

सुखदा ने उसके पीले, सूखे मुंह की ओर देखते हुए कहा-हां, मैंने दो-तीन चक्कर लगाए। अब यह घर कहलाने लायक हो गया मगर तुम्हारी यह क्या हालत है- बिल्कुल पहचानी ही नहीं जाती।

सकीना ने हंसने की चेष्टा करके कहा-मैं तो मोटी-ताजी कभी न थी।

'इस वक्त तो पहले से भी उतरी हुई हो।'

सहसा पठानिन आ गई और यह प्रश्न सुनकर बोली-महीनों से बुखार आ रहा है बेटी, लेकिन दवा नहीं खाती। कौन कहे मुझसे बोलचाल बंद है। अल्लाह जानता है, तुम्हारी बड़ी याद आती थी बहूजी पर आऊं कौन मुंह लेकर- अभी थोड़ी ही देर हुई, लालाजी भी गए हैं। जुग-जुग जिएं। सकीना ने मना कर दिया था इसलिए तलब लेने न गई थी। वही देने आए थे। दुनिया में ऐसे-ऐसे खुदा के बंदे पड़े हुए हैं। दूसरा होता, तो मेरी सूरत न देखता। उनका बसा-बसाया घर मुझ नसीबोंजली के कारण उजड़ गया। मगर लाला का दिल वही है, वही खयाल है, वही परवरिश की निगाह है। मेरी आंखों पर न जाने क्यों परदा पड़ गया था कि मैंने भोले-भाले लड़के पर वह इल्जाम लगा दिया। खुदा करे, मुझे मरने के बाद कफन भी न नसीब हो मैंने इतने दिनों बड़ी छानबीन की बेटी सभी ने मेरी लानत-मलामत की। इस लड़की ने तो मुझसे बोलना छोड़ दिया। खड़ी तो है पूछो। ऐसी-ऐसी बातें कहती है कि कलेजे में चुभ जाती हैं। खुदा सुनवाता है, तभी तो सुनती हूं। वैसा काम न किया होता तो क्यों सुनना पड़ता- उसे अंधेरे घर में इसके साथ देखकर मुझे शुबहा हो गया और जब उस गरीब ने देखा कि बेचारी औरत बदनाम हो रही है, तो उसकी खातिर अपना धरम देने को भी राजी हो गया। मुझ निगोड़ी को उस गुस्से में यह खयाल भी न रहा कि अपने ही मुंह तो कालिख लगा रही हूं।

सकीना ने तीव्र कंठ से कहा-अरे, हो तो चुका, अब कब तक दुखड़ा रोए जाओगी। कुछ और बातचीत करने दोगी या नहीं-

पठानिन ने फरियाद की-इसी तरह मुझे झिड़कती रहती है बेटी, बोलने नहीं देती। पूछो, तुमसे दुखड़ा न रोऊं, तो किसके पास रोने जाऊं-

सुखदा ने सकीना से पूछा-अच्छा, तुमने अपना वसीका लेने से क्यों इंकार कर दिया था- वह तो बहुत पहले से मिल रहा है।

सकीना कुछ बोलना ही चाहती थी कि पठानिन फिर बोली-इसके पीछे मुझसे लड़ा करती है, बहू कहती है, क्यों किसी की खैरात लें- यह नहीं सोचती कि उसी से तो हमारी परवरिश हुई है। बस, आजकल सिलाई की धुन है। बारह-बारह बजे रात तक बैठी आंखें फोड़ती रहती है। जरा सूरत देखो, इसी से बुखार भी आने लगा है, पर दवा के नाम से भागती है। कहती हूं, जान रखकर काम कर, कौन लाव-लशकर खाने वाला है लेकिन यहां तो धुन है, घर भी अच्छा हो जाए, सामान भी अच्छा बन जाए। इधर काम अच्छा मिला है, और मजूरी भी अच्छी मिल रही है मगर सब

इसी टीम-टाम में उड़ जाती है। यहां से थोड़ी दूर पर एक ईसाइन रहती है, वह रोज सुबह पढ़ाने आती है। हमारे जमाने में तो बेटा सिपारा और रोजा-नमाज का रिवाज था। कई जगह से शादी के पैगाम आए...

सकीना ने कठोर होकर कहा-अरे, तो अब चुप भी रहोगी। हो तो चुका। आपकी क्या खातिर करूं, बहन- आपने इतने दिनों बाद मुझ बदनसीब को याद तो किया ।

सुखदा ने उदार मन से कहा-याद तो तुम्हारी बराबर आती रहती थी और आने को जी भी चाहता था पर डरती थी, तुम अपने दिल में न जाने क्या समझो- यह तो आज मियां सलीम से मालूम हुआ कि तुम्हारी तबीयत अच्छी नहीं है। जब हम लोग तुम्हारी खिदमत करने को हर तरह हाजिर हैं, तो तुम नाहक क्यों जान देती हो-

सकीना जैसे शर्म को निगलकर बोली-बहन, मैं चाहे मर जाऊं, पर इस गरीबी को मिटाकर छोड़ूंगी। मैं इस हालत में न होती, तो बाबूजी को क्यों मुझ पर रहम आता, क्यों वह मेरे घर आते, क्यों उन्हें बदनाम होकर घर से भागना पड़ता- सारी मुसीबत की जड़ गरीबी है। इसका खात्मा करके छोड़ूंगी।

एक क्षण के बाद उसने पठानिन से कहा-जरा जाकर किसी तंबोलिन से पान ही लगवा लाओ। अब और क्या खातिर करें आपकी-

बुढ़िया को इस बहाने से टालकर सकीना धीरे स्वर में बोली-यह मुहम्मद सलीम का खत है। आप जब मुझ पर इतना रहम करती हैं, तो आपसे क्या परदा करूं- जो होना था, वह तो हो ही गया। बाबूजी यहां कई बार आए। खुदा जानता है जो उन्होंने कभी मेरी तरफ आंख उठाई हो। मैं भी उनका अदब करती थी। हां, उनकी शराफत का असर जरूर मेरे दिल पर होता था। एकाएक मेरी शादी का जिक्र सुनकर बाबूजी एक नशे की-सी हालत में आए और मुझसे मुहब्बत जाहिर की। खुदा गवाह है बहन, मैं एक हर्ग भी गलत नहीं कह रही हूं। उनकी प्यार की बातें सुनकर मुझे भी सुधा-बुधा भूल गई। मेरी जैसी औरत के साथ ऐसा शरीफ आदमी यों मुहब्बत करे, यह मुझे ले उड़ा। मैं वह नेमत पाकर दीवानी हो गई। जब वह अपना तन-मन सब मुझ पर निसार कर रहे थे, तो मैं काठ की पुतली तो न थी। मुझमें ऐसी क्या खूबी उन्होंने देखी, यह मैं नहीं जानती। उनकी बातों से यही मालूम होता था कि वह आपसे खुश नहीं हैं। बहन, मैं इस वक्त आपसे साफ-साफ बातें कर रही हूं, मुआफ कीजिएगा। आपकी तरफ से उन्हें कुछ मलाल जरूर था और जैसे गाका करने के बाद अमीर आदमी भी जरदा, पुलाव भूलकर सत्तूपर टूट पड़ता है, उसी तरह उनका दिल आपकी तरफ से मायूस होकर मेरी तरफ लपका। वह मुहब्बत के भूखे थे। मुहब्बत के लिए उनकी देह तड़पती रही थी। शायद यह नेमत उन्हें कभी मयस्सर ही न हुई। वह नुमाइश से खुश होने वाले आदमी नहीं हैं। वह दिल और जान से किसी के हो जाना चाहते हैं और उसे भी दिल और जान से अपना कर लेना चाहते हैं। मुझे अब अफसोस हो रहा है कि मैं उनके साथ चली क्यों न गई- बेचारे सत्तू पर गिरे तो वह भी सामने से खींच लिया गया। आप अब भी उनके दिल पर कब्जा कर सकती हैं। बस, एक मुहब्बत में डूबा हुआ खत लिख दीजिए। वह दूसरे ही दिन दौड़े हुए आएंगे। मैंने एक हीरा पाया है और जब तक कोई उसे मेरे हाथों से छीन न ले, उसे छोड़ नहीं सकती। महज यह खयाल कि मेरे पास हीरा है, मेरे दिल को हमेशा मजबूत और खुश बनाए रहेगा।

वह लपककर घर में गई और एक झ्र में बसा हुआ लिफाफा लाकर सुखदा के हाथ पर रखती हुई बोली-यह मियां मुहम्मद सलीम का खत है। आप पढ़ सकती हैं। कोई ऐसी बात नहीं है वह भी मुझ पर आशिक हो गए हैं, पहले अपने खिदमतगार के साथ मेरा निकाह करा देना चाहते थे। अब खुद निकाह करना चाहते हैं। पहले चाहे जो कुछ रहे हों,

पर अब उनमें वह छिछोरापन नहीं है। उनकी मामा उनका हाल बयान किया करती हैं। मेरी निस्बत भी उन्हें जो मालूम हुआ होगा, मामा से ही मालूम हुआ होगा। मैंने उन्हें दो-चार बार अपने दरवाजे पर भी ताकते-झांकते देखा है। सुनती हूं, किसी ऊंचे ओहदे पर आ गए हैं। मेरी तो जैसे तकदीर खुल गई, लेकिन मुहब्बत की जिस नाजुक जंजीर में बांधी हुई हूं, उसे बड़ी-से-बड़ी ताकत भी नहीं तोड़ सकती। अब तो जब तक मुझे मालूम न हो जाएगा कि बाबूजी ने मुझे दिल से निकाल दिया, तब तक उन्हीं की हूं, और उनके दिल से निकाली जाने पर भी इस मुहब्बत को हमेशा याद रखूंगी। ऐसी पाक मुहब्बत का एक लमहा इंसान को उम्र-भर मतवाला रखने के लिए काफी है। मैंने इसी मजमून का जवाब लिख दिया है। कल ही तो उनके जाने की तारीख है। मेरा खत पढ़कर रोने लगे। अब यह ठान ली है कि या तो मुझसे शादी करेंगे या बिना-ब्याहे रहेंगे। उसी जिले में तो बाबूजी भी हैं। दोनों दोस्तों में वहीं फैसला होगा। इसीलिए इतनी जल्द भागे जा रहे हैं।

बुढ़िया एक पत्तो की गिलौरी में पान लेकर आ गई। सुखदा ने निष्क्रिय भाव से पान लेकर खा लिया और फिर विचारों में डूब गई। इस दरिद्र ने उसे आज पूर्ण रूप से परास्त कर दिया था। आज वह अपनी विशाल संपत्ति और महती कुलीनता के साथ उसके सामने भिखारिन-सी बैठी हुई थी। आज उसका मन अपना अपराध स्वीकार करता हुआ जान पड़ा। अब तक उसने तर्क से मन को समझाया था कि पुरुष छिछोरे और हरजाई होते ही हैं, इस युवती के हाव-भाव, हास-विलास ने उन्हें मुग्ध कर लिया। आज उसे ज्ञात हुआ कि यहां न हाव-भाव है, न हास-विलास है, न वह जादू भरी चितवन है। यह तो एक शांत, करुण संगीत है, जिसका रस वही ले सकते हैं, जिनके पास हृदय है। लंपटों और विलासियों को जिस प्रकार चटपटे, उत्तेजक खाने में आनंद आता है, वह यहां नहीं है। उस उदारता के साथ, जो द्वेष की आग से निकलकर खरी हो गई थी, उसने सकीना की गरदन में बांहें डाल दीं और बोली-बहन, आज तुम्हारी बातों ने मेरे दिल का बोझ हल्का कर दिया। संभव है, तुमने मेरे ऊपर जो इल्जाम लगाया है, वह ठीक हो। तुम्हारी तरफ से मेरा दिल आज साफ हो गया। मेरा यही कहना है कि बाबूजी को अगर मुझसे शिकायत हुई थी, तो उन्हें मुझसे कहना चाहिए था। मैं भी ईश्वर से कहती हूं कि अपनी जान में मैंने उन्हें कभी असंतुष्ट नहीं किया। हां, अब मुझे कुछ ऐसी बातें याद आ रही हैं, जिन्हें उन्होंने मेरी निष्ठुरता समझी होगी पर उन्होंने मेरा जो अपमान किया, उसे मैं अब भी क्षमा नहीं कर सकती। अगर उन्हें प्रेम की भूख थी, तो मुझे भी प्रेम की भूख कुछ कम न थी। मुझसे वह जो चाहते थे, वही मैं उनसे चाहती थी। जो चीज वह मुझे न दे सके, वह मुझसे न पाकर वह क्यों उद्वंड हो गए-क्या इसीलिए कि वह पुरुष हैं, और पुरुष चाहे स्त्री को पांव की जूती समझें, पर स्त्री का धर्म है कि वह उनके पांव से लिपटी रहे- बहन, जिस तरह तुमने मुझसे कोई परदा नहीं रखा, उसी तरह मैं भी तुमसे निष्कपट बातें कर रही हूं। मेरी जगह पर एक क्षण के लिए अपने को रख लो। तब तुम मेरे भावों को पहचान सकोगी। अगर मेरी खता है तो उतनी ही उनकी भी खता है। जिस तरह मैं अपनी तकदीर को ठोककर बैठ गई थी, क्या वह भी न बैठ सकते थे- तब शायद सफाई हो जाती, लेकिन अब तो जब तक उनकी तरफ से हाथ न बढ़ाया जाएगा, मैं अपना हाथ नहीं बढ़ा सकती, चाहे सारी जिंदगी इसी दशा में पड़ी रहूं। औरत निर्बल है और इसीलिए उसे मान-सम्मान का दुःख भी ज्यादा होता है। अब मुझे आज्ञा दो बहन, जरा नैना से मिलना है। मैं तुम्हारे लिए सवारी भेजूंगी, कृपा करके कभी-कभी हमारे यहां आ जाया करो।

वह कमरे से बाहर निकली, तो सकीना रो रही थी, न जाने क्यों-

दस

सुखदा सेठ धनीराम के घर पहुंची, तो नौ बज रहे थे। बड़ा विशाल, आसमान से बातें करने वाला भवन था, जिसके द्वार पर एक तेज बिजली की बत्ती जल रही थी और दो दरबान खड़े थे। सुखदा को देखते ही भीतर-बाहर हलचल मच गई। लाला मनीराम घर में से निकल आए और उसे अंदर ले गए। दूसरी मंजिल पर सजा हुआ मुलाकाती कमरा था। सुखदा वहां बैठाई गई। घर की स्त्रियां

इधर-उधर परदों से झांक रही थीं, कमरे में आने का साहस न कर सकती थीं।

सुखदा ने एक कोच पर बैठकर पूछा-सब कुशल-मंगल है-

मनीराम ने एक सिगार सुलगाकर धुआं उड़ाते हुए कहा-आपने शायद पेपर नहीं देखा। पापा को दो दिन से ज्वर आ रहा है। मैंने तो कलकत्ता से मि. लैंसट को बुला लिया है। यहां किसी पर मुझे विश्वास नहीं। मैंने पेपर में तो दे दिया था। बूढ़े हुए, कहता हूं आप शांत होकर बैठिए, और वे चाहते भी हैं, पर यहां जब कोई बैठने भी दे। गवर्नर प्रयाग आए थे। उनके यहां से खास उनके प्राइवेट सेक्रेटरी का निमंत्रण आ पहुंचा। जाना लाजिम हो गया। इस शहर में और किसी के पास निमंत्रण नहीं आया। इतने बड़े सम्मान को कैसे ठुकरा दिया जाता- वहीं सरदी खा गए। सम्मान ही तो आदमी की जिंदगी में एक चीज है, यों तो अपना-अपना पेट सभी पालते हैं। अब यह समझिए कि सुबह से शाम तक शहर के रईसों का तांता लगा रहता है। सवेरे डिप्टी कमिश्नर और उनकी मेम साहब आई थीं। कमिश्नर ने भी हमदर्दी का तार भेजा है। दो-चार दिन की बीमारी कोई बात नहीं, यह सम्मान तो प्राप्त हुआ। सारा दिन अफसरों की खातिरदारी में कट रहा है।

नौकर पान-इलायची की तश्तरी रख गया। मनीराम ने सुखदा के सामने तश्तरी रख दी। फिर बोले-मेरे घर में ऐसी औरत की जरूरत थी, जो सोसाइटी का आचार-व्यवहार जानती हो और लेडियों का स्वागत-सत्कार कर सके। इस शादी से तो वह बात पूरी हुई नहीं। मुझे मजबूर होकर दूसरा विवाह करना पड़ेगा। पुराने विचार की स्त्रियों की तो हमारे यहां यों भी कमी न थी पर वह लेडियों की सेवा-सत्कार तो नहीं कर सकतीं। लेडियों के सामने तो उन्हें ला ही नहीं सकते। ऐसी फूहड़, गंवार औरतों को उनके सामने लाकर अपना अपमान कौन कराए-

सुखदा ने मुस्कराकर कहा-तो किसी लेडी से आपने क्यों विवाह न किया-

मनीराम निस्संकोच भाव से बोला-धोखा हुआ और क्या- हम लोगों को क्या मालूम था कि ऐसे शिक्षित परिवार में लड़कियां ऐसी फूहड़ होंगी- अम्मां, बहनें और आस-पास की स्त्रियां तो नई बहू से बहुत संतुष्ट हैं। वह व्रत रखती है, पूजा करती है, सिंदूर का टीका लगाती है लेकिन मुझे तो संसार में कुछ काम, कुछ नाम करना है। मुझे पूजा-पाठ वाली औरतों की जरूरत नहीं, पर अब तो विवाह हो ही गया, यह तो टूट नहीं सकता। मजबूर होकर दूसरा विवाह करना पड़ेगा। अब यहां दो-चार लेडियां रोज ही आया चाहें, उनका सत्कार न किया जाए, तो काम नहीं चलता। सब समझती होंगी, यह लोग कितने मूर्ख हैं।

सुखदा को इस इक्कीस वर्ष वाले युवक की इस निस्संकोच सांसारिकता पर घृणा हो रही थी। उसकी स्वार्थ-सेवा ने जैसे उसकी सारी कोमल भावनाओं को कुचल डाला था, यहां तक कि वह हास्यास्पद हो गया था।

'इस काम के लिए तो आपको थोड़े-से वेतन में किरानियों की स्त्रियां मिल जाएंगी, जो लेडियों के साथ साहबों का भी सत्कार करेंगी।'

'आप इन व्यापार संबंधी समस्याओं को नहीं समझ सकतीं। बड़े-बड़े मिलों के एजेंट आते हैं। अगर मेरी स्त्री उनसे बातचीत कर सकती, तो कुछ-न-कुछ कमीशन रेट बढ़ जाता। यह काम तो कुछ औरत ही कर सकती हैं।'

'मैं तो कभी न करूँ। चाहे सारा कारोबार जहन्नुम में मिल जाए।'

'विवाह का अर्थ जहां तक मैं समझा हूँ वह यही है कि स्त्री पुरुष की सहगामिनी है। अंग्रेजों के यहां बराबर स्त्रियां सहयोग देती हैं।'

'आप सहगामिनी का अर्थ नहीं समझे।'

मनीराम मुंह फट था। उसके मुसाहिब इसे साफगोई कहते थे। उसका विनोद भी गाली से शुरू होता था और गाली तो गाली थी ही। बोला-कम-से-कम आपको इस विषय में मुझे उपदेश करने का अधिकार नहीं है। आपने इस शब्द का अर्थ समझा होता, तो इस वक्त आप अपने पति से अलग न होतीं और न वह गली-कूचों की हवा खाते होते।

सुखदा का मुखमंडल लज्जा और क्रोध से आरक्त हो उठा। उसने कुर्सी से उठकर कठोर स्वर में कहा-मेरे विषय में आपको टीका करने का कोई अधिकार नहीं है, लाला मनीराम जरा भी अधिकार नहीं है। आप अंग्रेजी सभ्यता के बड़े भक्त बनते हैं। क्या आप समझते हैं कि अंग्रेजी पहनावा और सिगार ही उस सभ्यता के मुख्य अंग हैं- उसका प्रधान अंग है, महिलाओं का आदर और सम्मान। वह अभी आपको सीखना बाकी है। कोई कुलीन स्त्री इस तरह आत्म-सम्मान खोना स्वीकार न करेगी।

उसका फर्जन सुनकर सारा घर थर्रा उठा और मनीराम की तो जैसे जबान बंद हो गई। नैना अपने कमरे में बैठी हुई भावज का इंतजार कर रही थी, उसकी गरज सुनकर समझ गई, कोई-न कोई बात हो गई। दौड़ी हुई आकर बड़े कमरे के द्वार पर खड़ी हो गई।

'मैं तुम्हारी राह देख रही थी भाभी, तुम यहां कैसे बैठ गईं?'

सुखदा ने उसकी ओर ध्यान न देकर उसी रोष में कहा-धन कमाना अच्छी बात है, पर इज्जत बेचकर नहीं। और विवाह का उद्देश्य वह नहीं है जो आप समझे हैं। मुझे आज मालूम हुआ कि स्वार्थ में पड़कर आदमी का कहां तक पतन हो सकता है।

नैना ने आकर उसका हाथ पकड़ लिया और उसे उठाती हुई बोली-अरे, तो यहां से उठोगी भी।

सुखदा और उत्तोजित होकर बोली-मैं क्यों अपने स्वामी के साथ नहीं गई- इसलिए कि वह जितने त्यागी हैं, मैं उतना त्याग नहीं कर सकती थी आपको अपना व्यवसाय और धन अपनी पत्नी के आत्म-सम्मान से प्यारा है। उन्होंने दोनों ही को लात मार दी। आपने गली-कूचों की जो बात कही, इसका अगर वही अर्थ है, जो मैं समझती हूँ, तो वह मिथ्या कलंक है। आप अपने रुपये कमाते जाइए, आपका उस महान आत्मा पर छींटे उड़ाना छोटे मुंह बड़ी बात है।

सुखदा लोहार की एक को सोनार की सौ के बराबर करने की असफल चेष्टा कर रही थी। वह एक वाक्य उसके हृदय में जितना चुभा, वैसा पैना कोई वाक्य वह न निकाल सकी।

नैना के मुंह से निकला-भाभी, तुम किसके मुंह लग रही हो-

मनीराम क्रोध से मुट्ठी बंधकर बोला-मैं अपने ही घर में अपना यह अपमान नहीं सह सकता।

नैना ने भावज के सामने हाथ जोड़कर कहा-भाभी, मुझ पर दया करो। ईश्वर के लिए यहां से चलो।

सुखदा ने पूछा-कहां हैं सेठजी, जरा मुझे उनसे दो-दो बातें करनी हैं-

मनीराम ने कहा-आप इस वक्त उनसे नहीं मिल सकतीं। उनकी तबीयत अच्छी नहीं है, और ऐसी बातें सुनना वह पसंद न करेंगे।

'अच्छी बात है, न जाऊंगी। नैनादेवी, कुछ मालूम है तुम्हें, तुम्हारी एक अंग्रेजी सौत आने वाली है, बहुत जल्द।'

'अच्छा ही है, घर में आदमियों का आना किसे बुरा लगता है- एक-दो जितनी चाहें, आवें, मेरा क्या बिगड़ता है?'

मनीराम इस परिहास पर आपे से बाहर हो गया। सुखदा नैना के साथ चली, तो सामने आकर बोला-आप मेरे घर में नहीं जा सकतीं।

सुखदा रुककर बोली-अच्छी बात है, जाती हूं, मगर याद रखिएगा, इस अपमान का नतीजा आपके हक में अच्छा न होगा।

नैना पैरों पड़ती रही, पर सुखदा झल्लाई हुई बाहर निकल गई।

एक क्षण में घर की सारी औरतें और बच्चे जमा हो गए और सुखदा पर आलोचनाएं होने लगीं। किसी ने कहा-इसकी आंख का पानी मर गया। किसी ने कहा-ऐसी न होती, तो खसम छोड़कर क्यों चला जाता- नैना सिर झुकाए सुनती रही। उसकी आत्मा उसे धिक्कार रही थी-तेरे सामने यह अनर्थ हो रहा है, और तू बैठी सुन रही है, लेकिन उस समय जबान खोलना कहर हो जाता। वह लाला समरकान्त की बेटी है, इस अपराध को उसकी निष्कपट सेवा भी न मिटा सकी थी। वाल्मीकीय रामायण की कथा के अवसर पर समरकान्त ने लाला धानीराम का मस्तक नीचा करके इस वैमनस्य का बीज बोया था। उसके पहले दोनों सेठों में मित्र-भाव था। उस दिन से द्वेष उत्पन्न हुआ। समरकान्त का मस्तक नीचा करने ही के लिए धानीराम ने यह विवाह स्वीकार किया। विवाह के बाद उनकी द्वेष ज्वाला ठंडी हो गई थी। मनीराम ने मेज पर पैर रखकर इस भाव से कहा, मानो सुखदा को वह कुछ नहीं समझता-मैं इस औरत को क्या जवाब देता- कोई मर्द होता, तो उसे बताता। लाला समरकान्त ने जुआ खेलकर धन कमाया है। उसी पाप का फल भोग रहे हैं। यह मुझसे बातें करने चली हैं। इनकी माता हैं, उन्हें उस शोहदे शान्तिकुमार ने बेवकूफ बनाकर सारी जायदाद लिखा ली। अब टके-टके को मुंहताज हो रही हैं। समरकान्त का भी यही हाल होने वाला है। और यह देवी देश का उपकार करने चली हैं। अपना पुरुष तो मारा-मारा फिरता है और आप देश का उधार कर रही हैं। अछूतों के लिए मंदिर क्या खुलवा दिया, अब किसी को कुछ समझती ही नहीं अब म्युनिसिपैलटी से जमीन के लिए लड़ रही हैं। ऐसी गच्चा खाएंगी कि याद करेंगी। मैंने इन दो सालों में जितना कारोबार बढ़ाया है, लाला समरकान्त सात जन्म में नहीं बढ़ा सकते।

मनीराम का सारे घर पर आधिपत्य था। वह धन कमा सकता था, इसलिए उसके आचार-व्यवहार को पसंद न करने पर भी घर उसका गुलाम था। उसी ने तो कागज और चीनी की एजेंसी खोली थी। लाला धानीराम घी का काम करते थे और घी के व्यापारी बहुत थे। लाभ कम होता था। कागज और चीनी का वह अकेला एजेंट था। नफा का क्या ठिकाना इस सफलता से उसका सिर फिर गया था। किसी को न गिनता था, अगर कुछ आदर करता था, तो लाला धानीराम का। उन्हीं से कुछ दबता भी था।

यहां लोग बातें कर रहे थे कि लाला धानीराम खांसते, लाठी टेकते हुए आकर बैठ गए।

मनीराम ने तुरंत पंखा बंद करते हुए कहा-आपने क्यों कष्ट किया, बाबूजी- मुझे बुला लेते। डॉक्टर ने आपको चलने-फिरने को मना किया था।

लाला धानीराम ने पूछा-क्या आज लाला समरकान्त की बहू आई थी-

मनीराम कुछ डर गया-जी हां, अभी-अभी चली गई।

धानीराम ने आंखें निकालकर कहा-तो तुमने अभी से मुझे मरा समझा लिया- मुझे खबर तक न दी-

'मैं तो रोक रहा था पर वह झल्लाई हुई चली गई।'

'तुमने अपनी बातचीत से उसे अप्रसन्न कर दिया होगा नहीं वह मुझसे मिले बिना न जाती।'

'मैंने तो केवल यही कहा था कि उनकी तबीयत अच्छी नहीं है।'

'तो तुम समझते हो, जिसकी तबीयत अच्छी न हो, उसे एकांत में मरने देना चाहिए- आदमी एकांत में मरना भी नहीं चाहता। उसकी हार्दिक इच्छा होती है कि कोई संकट पड़ने पर उसके सगे-संबंधी आकर उसे घेर लें।'

लाला धानीराम को खांसी आ गई। जरा देर के बाद वह फिर बोले-मैं कहता हूं, तुम कुछ सिड़ी तो नहीं हो गए- व्यवसाय में सफलता पा जाने ही से किसी का जीवन सफल नहीं हो जाता। समझ गए- सफल मनुष्य वह है, जो दूसरों से अपना काम भी निकाले और उन पर एहसान भी रखे। शेखी मारना सफलता की दलील नहीं, ओछेपन की दलील है। वह मेरे पास आती, तो यहां से प्रसन्न होकर जाती और उसकी सहायता बड़े काम की वस्तु है। नगर में उसका कितना सम्मान है, शायद तुम्हें इसकी खबर नहीं। वह अगर तुम्हें नुकसान पहुंचाना चाहे, तो एक दिन में तबाह कर सकती है। और वह तुम्हें तबाह करके छोड़ेगी। मेरी बात गिरह बंध लो। वह एक ही जिद्वी औरत है जिसने पति की परवाह न की, अपने प्राणों की परवाह न की-न जाने तुम्हें कब अकल आएगी-

लाला धानीराम को खांसी का दौरा आ गया। मनीराम ने दौड़कर उन्हें संभाला और उनकी पीठ सहलाने लगा। एक मिनट के बाद लालाजी को सांस आई।

मनीराम ने चिंतित स्वर में कहा-इस डॉक्टर की दवा से आपको कोई फायदा नहीं हो रहा है। कविराज को क्यों न बुला लिया जाय- मैं उन्हें तार दिए देता हूं।

धानीराम ने लंबी सांस खींचकर कहा-अच्छा तो हूंगा बेटा, मैं किसी साधु की चुटकी-भर राख ही से। हां, वह तमाशा चाहे कर लो, और यह तमाशा बुरा नहीं रहा। थोड़े से रुपये ऐसे तमाशों में खर्च कर देने का मैं विरोध नहीं करता लेकिन इस वक्त के लिए इतना बहुत है। कल डॉक्टर साहब से कह दूंगा, मुझे बहुत फायदा है, आप तशरीफ ले जाएं।

मनीराम ने डरते-डरते पूछा-कहिए तो मैं सुखदादेवी के पास जाऊं-

धानीराम ने गर्व से कहा-नहीं, मैं तुम्हारा अपमान करना नहीं चाहता। जरा मुझे देखना है कि उसकी आत्मा कितनी उदार है- मैंने कितनी ही बार हानियां उठाईं, पर किसी के सामने नीचा नहीं बना। समरकान्त को मैंने देखा। वह लाख बुरा हो, पर दिल का साफ है, दया और धर्म को कभी नहीं छोड़ता। अब उनकी बहू की परीक्षा लेनी है।

यह कहकर उन्होंने लकड़ी उठाई और धीरे-धीरे अपने कमरे की तरफ चले। मनीराम उन्हें हाथों से संभाले हुए था।

ग्यारह

सावन में नैना मैके आई। ससुराल चार कदम पर थी, पर छः महीने से पहले आने का अवसर न मिला। मनीराम का बस होता तो अब भी न आने देता लेकिन सारा घर नैना की तरफ था। सावन में सभी बहुएं मैके जाती हैं। नैना पर इतना बड़ा अत्याचार नहीं किया जा सकता।

सावन की झड़ी लगी हुई थी कहीं कोई मकान गिरता था, कहीं कोई छत बैठती थी। सुखदा बरामदे में बैठी हुई आंगन में उठते हुए बुलबुलों की सैर कर रही थी। आंगन कुछ गहरा था, पानी रुक जाया करता था। बुलबुलों का बतासों की तरह उठकर कुछ दूर चलना और गायब हो जाना, उसके लिए मनोरंजक तमाशा बना हुआ था। कभी-कभी दो बुलबुले आमने-सामने आ जाते और जैसे हम कभी-कभी किसी के सामने आ जाने पर कतराकर निकल जाना चाहते हैं पर जिस तरफ हम मुड़ते हैं, उसी तरफ वह भी मुड़ता है और एक सेकंड तक यही दांव-घात होता रहता है, यही तमाशा यहां भी हो रहा था। सुखदा को ऐसा आभास हुआ, मानो यह जानदार हैं, मानो नन्हें-नन्हें बालक गोल टोपियां लगाए जल-क्रीड़ा कर रहे हैं।

इसी वक्त नैना ने पुकारा-भाभी, आओ, नाव-नाव खेलें। मैं नाव बना रही हूं।

सुखदा ने बुलबुलों की ओर ताकते हुए जवाब दिया-तुम खेलो, मेरा जी नहीं चाहता।

नैना ने न माना। दो नावें लिए आकर सुखदा को उठाने लगी-जिसकी नाव किनारे तक पहुंच जाय उसकी जीत। पांच-पांच रुपये की बाजी।

सुखदा ने अनिच्छा से कहा-तुम मेरी तरफ से भी एक नाव छोड़ दो। जीत जाना, तो रुपये ले लेना पर उसकी मिठाई नहीं आएगी, बताए देती हूं।

'तो क्या दवाएं आएंगी?'

'वाह, उससे अच्छी और क्या बात होगी- शहर में हजारों आदमी खांसी और ज्वर में पड़े हुए हैं। उनका कुछ उपकार हो जाएगा।'

सहसा मुन्ने ने आकर दोनों नावें छीन लीं और उन्हें पानी में डालकर तालियां बजाने लगा।

नैना ने बालक का चुंबन लेकर कहा-वहां दो-एक बार रोज इसे याद करके रोती थी। न जाने क्यों बार-बार इसी की याद आती रहती थी।

'अच्छा, मेरी याद भी कभी आती थी?'

'कभी नहीं। हां, भैया की याद बार-बार आती थी- और वह इतने निरुर हैं कि छः महीने में एक पत्र भी न भेजा। मैंने भी ठान लिया है कि जब तक उनका पत्र न आएगा, एक खत भी न लिखूंगी।'

'तो क्या सचमुच तुम्हें मेरी याद न आती थी- और मैं समझ रही थी कि तुम मेरे लिए विकल हो रही होगी। आखिर अपने भाई की बहन ही तो हो। आंख की ओट होते ही गायब।'

'मुझे तो तुम्हारे ऊपर क्रोध आता था। इन छः महीनों में केवल तीन बार गई और फिर भी मुन्ने को न ले गई।'

'यह जाता, तो आने का नाम न लेता।'

'तो क्या मैं इसकी दुश्मन थी?'

'उन लोगों पर मेरा विश्वास नहीं है, मैं क्या करूँ- मेरी तो यही समझ नहीं आता कि तुम वहां कैसे रहती थीं?'

'तो क्या करती, भाग आती- तब भी तो जमाना मुझी को हंसता।'

'अच्छा सच बताना, पतिदेव तुमसे प्रेम करते हैं?'

'वह तो तुम्हें मालूम ही है।'

'मैं तो ऐसे आदमी से एक बार भी न बोलती।'

'मैं भी कभी नहीं बोली।'

'सच बहुत बिगड़े होंगे- अच्छा, सारा वृत्तांत कहो। सोहागरात को क्या हुआ- देखो, तुम्हें मेरी कसम, एक शब्द भी झूठ न कहना।'

नैना माथा सिकोड़कर बोली-भाभी, तुम मुझे दिक करती हो, लेकर कसम रखा दी। जाओ, मैं कुछ नहीं बताती।

'अच्छा, न बताओ भाई, कोई जबरदस्ती है?'

यह कहकर वह उठकर ऊपर चली। नैना ने उसका हाथ पकड़कर कहा-अब भाभी कहां जाती हो, कसम तो रखा चुकीं- बैठकर सुनती जाओ। आज तक मेरी और उनकी एक बार भी बोलचाल नहीं हुई।

सुखदा ने चकित होकर कहा-अरे सच कहो...।

नैना ने व्यथित हृदय से कहा-हां, बिल्कुल सच है, भाभी जिस दिन मैं गई उस दिन रात को वह गले में हार डाले, आंखें नशे से लाल, उन्मत्ता की भांति पहुंचे, जैसे कोई प्यादा असामी से महाजन के रुपये वसूल करने जाय। और मेरा घूंगट हटाते हुए बोले-मैं तुम्हारा घूंगट देखने नहीं आया हूं, और न मुझे यह ढकोसला पसंद है। आकर इस कुर्सी पर बैठो। मैं उन दकियानूसी मर्दों में नहीं हूं जो ये गुड़ियों के खेल खेलते हैं। तुम्हें हंसकर मेरा स्वागत करना चाहिए था और तुम घूंगट निकाले बैठी हो, मानो तुम मेरा मुंह नहीं देखना चाहतीं। उनका हाथ पड़ते ही मेरी देह में जैसे सर्प ने काट लिया। मैं सिर से पांव तक सिहर उठी। इन्हें मेरी देह को स्पर्श करने का क्या अधिकार है- यह प्रश्न एक ज्वाला की भांति मेरे मन में उठा। मेरी आंखों से आंसू गिरने लगे, वह सारे सोने के स्वप्न, जो मैं कई दिनों से देख रही थी, जैसे उड़ गए। इतने दिनों से जिस देवता की उपासना कर रही थी, क्या उसका यही रूप था इसमें न देवत्व था, न मनुष्यत्व था। केवल मदांधाता थी, अधिकार का गर्व था और हृदयहीन निर्लज्जता थी। मैं श्रद्धा के थाल में अपनी आत्मा का सारा अनुराग, सारा आनंद, सारा प्रेम स्वामी के चरणों पर समर्पित करने को बैठी हुई थी। उनका यह रूप देखकर, जैसे थाल मेरे हाथ से छूटकर गिर पड़ा और इसका धूप-दीप-नैवे? जैसे भूमि पर बिखर गया। मेरी चेतना का एक-एक रोम, जैसे इस अधिकार-गर्व से विद्रोह करने लगा। कहां था वह आत्म-समर्पण का भाव, जो मेरे अणु-अणु में व्याप्त हो रहा था। मेरे जी में आया, मैं भी कह दूं कि तुम्हारे साथ मेरे विवाह का यह आशय नहीं है कि मैं तुम्हारी लौंडी हूं। तुम मेरे स्वामी हो, तो मैं भी तुम्हारी स्वामिनी हूं। प्रेम के शासन के सिवा मैं कोई दूसरा शासन स्वीकार नहीं कर सकती और न चाहती हूं कि तुम स्वीकार करो लेकिन जी ऐसा जल रहा था कि मैं इतना तिरस्कार भी न कर सकी। तुरंत वहां से उठकर बरामदे में आ खड़ी हुई। वह कुछ देर कमरे में मेरी प्रतीक्षा करते रहे, फिर झल्लाकर उठे और मेरा हाथ पकड़कर कमरे में ले जाना चाहा। मैंने झटके से अपना हाथ छुड़ा लिया और कठोर स्वर

में बोली-मैं यह अपमान नहीं सह सकती।

आप बोले-उगर्िाेह, इस रूप पर इतना अभिमान ।

मेरी देह में आग लग गई। कोई जवाब न दिया। ऐसे आदमी से बोलना भी मुझे अपमानजनक मालूम हुआ। मैंने अंदर आकर किवाड़ बंद कर लिए, और उस दिन से फिर न बोली। मैं तो ईश्वर से यही मनाती हूं कि वह अपना विवाह कर लें और मुझे छोड़ दें। जो स्त्री में केवल रूप देखना चाहता है, जो केवल हाव-भाव और दिखावे का गुलाम है, जिसके लिए स्त्री केवल स्वार्थ सिद्ध साधन है, उसे मैं अपना स्वामी नहीं स्वीकार कर सकती।

सुखदा ने विनोद-भाव से पूछा-लेकिन तुमने ही अपने प्रेम का कौन-सा परिचय दिया। क्या विवाह के नाम में इतनी बरकत है कि पतिदेव आते-ही-आते तुम्हारे चरणों पर सिर रख देते -

नैना गंभीर होकर बोली-हां, मैं तो समझती हूं, विवाह के नाम में ही बरकत है। जो विवाह को धर्म का बंधन नहीं समझता है, इसे केवल वासना की तृप्ति का साधन समझता है, वह पशु है।

सहसा शान्तिकुमार पानी में लथपथ आकर खड़े हो गए।

सुखदा ने पूछा-भीग कहां गए, क्या छतरी न थी-

शान्तिकुमार ने बरसाती उतारकर अलगनी पर रख दी, और बोले-आज बोर्ड का जलसा था। लौटते वक्त कोई सवारी न मिली।

'क्या हुआ बोर्ड में- हमारा प्रस्ताव पेश हुआ?'

'वही हुआ, जिसका भय था।'

'कितने वोटों से हारे।'

'सिर्फ पांच वोटों से। इन्हीं पांचों ने दगा दी। लाला धानीराम ने कोई बात उठा नहीं रखी।'

सुखदा ने हतोत्साह होकर कहा-तो फिर अब-

'अब तो समाचार-पत्रों और व्याख्यानों से आंदोलन करना होगा।'

सुखदा उत्तोजित होकर बोली-जी नहीं, मैं इतनी सहनशील नहीं हूं। लाला धानीराम और उनके सहयोगियों को मैं चैन की नींद न सोने दूंगी। इतने दिनों सबकी खुशामद करके देख लिया। अब अपनी शक्ति का प्रदर्शन करना पड़ेगा। फिर दस-बीस प्राणों की आहुति देनी पड़ेगी, तब लोगों की आंखें खुलेंगी। मैं इन लोगों का शहर में रहना मुश्किल कर दूंगी।

शान्तिकुमार लाला धानीराम से जले हुए थे। बोले-यह उन्हीं सेठ धानीराम के हथकंडे हैं।

सुखदा ने द्वेष भाव से कहा-किसी राम के हथकंडे हों, मुझे इसकी परवाह नहीं। जब बोर्ड ने एक निश्चय किया, तो उसकी जिम्मेदारी एक आदमी के सिर नहीं, सारे बोर्ड पर है। मैं इन महल-निवासियों को दिखा दूंगी कि जनता के हाथों में भी कुछ बल है। लाला धानीराम जमीन के उन टुकड़ों पर अपने पांव न जमा सकेंगे।

शान्तिकुमार ने कातर भाव से कहा-मेरे खयाल में तो इस वक्त प्रोपेगेंडा करना ही काफी है। अभी मामला तूल हो जाएगा।

ट्रस्ट बन जाने के बाद से शान्ति कुमार किसी जोखिम के काम में आगे कदम उठाते हुए घबराते थे। अब उनके ऊपर एक संस्था का भार था और अन्य साधारणों की भांति वह भी साधारण को ही सि' समझने लगे थे। अब उन्हें बात-बात में बदनामी और अपनी संस्था के नष्ट हो जाने की शंका होती थी।

सुखदा ने उन्हें फटकार बताई-आप क्या बातें कर रहे हैं, डॉक्टर साहब मैंने इन पढ़े-लिखे स्वार्थियों को खूब देख लिया। मुझे अब मालूम हो गया कि यह लोग केवल बातों के शेर हैं। मैं उन्हें दिखा दूंगी कि जिन गरीबों को तुम अब तक कुचलते आए हो, वही अब सांप बनकर तुम्हारे पैरों से लिपट जाएंगे। अब तक यह लोग उनसे रियायत चाहते थे, अब अपना हक मांगेंगे। रियायत न करने का उन्हें अख्तियार है, पर हमारे हक से हमें कौन वंचित रख सकता है-रियायत के लिए कोई जान नहीं देता, पर हक के लिए जान देना सब जानते हैं। मैं भी देखूंगी, लाला धनीराम और उनके पिछू कितने पानी में हैं-

यह कहती हुई सुखदा पानी बरसते में कमरे से निकल आई।

एक मिनट के बाद शान्तिकुमार ने नैना से पूछा-कहां चली गईं- बहुत जल्द गरम हो जाती हैं।

नैना ने इधर-उधर देखकर कहार से पूछा, तो मालूम हुआ, सुखदा बाहर चली गई। उसने आकर शान्ति कुमार से कहा ।

शान्तिकुमार ने विस्मित होकर कहा-इस पानी में कहां गई होंगी- मैं डरता हूं, कहीं हड़ताल-वड़ताल न कराने लगे। तुम तो वहां जाकर मुझे भूल गईं नैना, एक पत्र भी न लिखा।

एकाएक उन्हें ऐसा जान पड़ा कि उनके मुंह से एक अनुचित बात निकल गई है। उन्हें नैना से यह प्रश्न न पूछना चाहिए था। इसका वह जाने मन में क्या आशय समझे। उन्हें यह मालूम हुआ, जैसे कोई उसका गला दबाए हुए है। वह वहां से भाग जाने के लिए रास्ता खोजने लगे। वह अब यहां एक क्षण भी नहीं बैठ सकते। उनके दिल में हलचल होने लगी, कहीं नैना अप्रसन्न होकर कुछ कह न बैठे ऐसी मूर्खता उन्होंने कैसे कर डाली अब तो उनकी इज्जत ईश्वर के हाथ है ।

नैना का मुख लाल हो गया। वह कुछ जवाब न देकर मुन्ने को पुकारती हुई कमरे से निकल गई। शान्तिकुमार मूर्तिवत बैठे रहे। अंत को वह उठकर सिर झुकाए इस तरह चले, मानो जूते पड़ गए हों। नैना का यह आरक्त मुख-मंडल एक दीपक की भांति उनके अन्तःपट को जैसे जलाए डालता था।

नैना ने सहृदयता से कहा-कहां चले डॉक्टर साहब, पानी तो निकल जाने दीजिए ।

शान्तिकुमार ने कुछ बोलना चाहा, पर शब्दों की जगह कंठ में जैसे नमक का डला पड़ा हुआ था। वह जल्दी से बाहर चले गए, इस तरह लड़खड़ाते हुए, मानो अब गिरे तब गिरे। आंखों में आंसुओं का सफर उमड़ा हुआ था।

बारह

अब भी मूसलाधार वर्षा हो रही थी। संध्या से पहले संध्या हो गई थी। और सुखदा ठाकुरद्वारे में बैठी हुई ऐसी हड़ताल का प्रबंध कर रही थी, जो म्युनिसिपल बोर्ड और उसके कर्ण-धारों का सिर हमेशा के लिए नीचा कर दे, उन्हें हमेशा के लिए सबक मिल जाय कि जिन्हें वे नीच समझते हैं, उन्हीं की दया और सेवा पर उनके जीवन का आधार है। सारे नगर में एक सनसनी-सी छाई हुई है, मानो किसी शत्रु ने नगर को घेर लिया हो। कहीं धोबियों का जमाव हो

रहा है, कहीं चमारों का, कहीं मेहतरों का। नाई-कहारों की पंचायत अलग हो रही है। सुखदादेवी की आज्ञा कौन टाल सकता था- सारे शहर में इतनी जल्द संवाद फैल गया कि यकीन न आता था। ऐसे अवसरों पर न जाने कहां से दौड़ने वाले निकल आते हैं, जैसे

हवा में भी हलचल होने लगती है। महीनों से जनता को आशा हो रही थी कि नए-नए घरों में रहेंगे, साफ-सुथरे हवादार घरों में, जहां धूप होगी, हवा होगी, प्रकाश होगा। सभी एक नए जीवन का स्वप्न देख रहे थे। आज नगर के अधिकारियों ने उनकी सारी आशाएं धूल में मिला दीं।

नगर की जनता अब उस दशा में न थी कि उस पर कितना ही अन्याय हो और वह चुपचाप सहती जाय। उसे अपने स्वत्व का ज्ञान हो चुका था उन्हें मालूम हो गया था कि उन्हें भी आराम से रहने का उतना ही अधिकार है, जितना धानियों को। एक बार संगठित आग्रह की सफलता देख चुके थे। अधिकारियों की यह निरंकुशता, यह स्वार्थपरता उन्हें असह्य हो गई। और यह कोई सिध्दांत की राजनैतिक लड़ाई न थी, जिसका प्रत्यक्ष स्वरूप जनता की समझ में मुश्किल से आता है। इस आंदोलन का तत्काल फल उनके सामने था। भावना या कल्पना पर जोर देने की जरूरत न थी। शाम होते-होते ठाकुरद्वारे में अच्छा-खासा बाजार लग गया।

धोंबियों का चौधरी मैकू अपनी बकरे-की-सी दाढ़ी हिलाता हुआ बोला, नशे से आंखें लाल थीं-कपड़े बना रहा था कि खबर मिली। भागा आ रहा हूं। घर में कहीं कपड़े रखने की जगह नहीं है। गीले कपड़े कहां सूखें-

इस पर जगन्नाथ मेहरा ने डांटा-झूठ न बोलो मैकू, तुम कपड़े बना रहे थे अभी- सीधो ताड़ीखाने से चले आ रहे हो। कितना समझाया गया पर तुमने अपनी टेब न छोड़ी।

मैकू ने तीखे होकर कहा-लो, अब चुप रहो चौधरी, नहीं अभी सारी कलाई खोल दूंगा। घर में बैठकर बोतल-के-बोतल उड़ा जाते हो और यहां आकर सेखी बघारते हो।

मेहतरों का जमादार मतई खड़े होकर अपनी जमादारी की शान दिखाकर बोला-पंचो, यह बखत बदहवाई बातें करने का नहीं है। जिस काम के लिए देवीजी ने बुलाया है, उसको देखो और फैसला करो कि अब हमें क्या करना है- उन्हीं बिलों में पड़े सड़ते रहें, या चलकर हाकिमों से फरियाद करें।

सुखदा ने विद्रोह-भरे स्वर में कहा-हाकिमों से जो कुछ कहना-सुनना था, कह-सुन चुके, किसी ने भी कान न दिया। छः महीने से यही कहा-सुनी हो रही है। लेकिन अब तक उसका कोई फल न निकला, तो अब क्या निकलेगा- हमने आरजू-मिन्नत से काम निकालना चाहा था पर मालूम हुआ, सीधी उंगली से घी नहीं निकलता। हम जितना दबेंगे, यह बड़े आदमी हमें उतना ही दबाएंगे, आज तुम्हें तय करना है कि तुम अपने हक के लिए लड़ने को तैयार हो या नहीं।

चमारों का मुखिया सुमेर लाठी टेकता हुआ, मोटे चश्मे लगाए पोपले मुंह से बोला-अरज-माईद करने के सिवा और हम कर ही क्या सकते हैं- हमारा क्या बस है-

मुरली खटीक ने बड़ी-बड़ी मूंछों पर हाथ फेरकर कहा-बस कैसे नहीं है- हम आदमी नहीं हैं कि हमारे बाल-बच्चे नहीं हैं- किसी को तो महल और बंगला चाहिए, हमें कच्चा घर भी न मिले। मेरे घर में पांच जने हैं उनमें से चार आदमी महीने भर से बीमार हैं। उस कालकोठरी में बीमार न हों, तो क्या हो- सामने से फंदा नाला बहता है। सांस लेते नाक फटती है।

ईदू कुंजडा अपनी झुकी हुई कमर को सीधी करने की चेष्टा करते हुए बोला-अगर मुझपर में आराम करना लिखा होता, तो हम भी किसी बड़े आदमी के घर न पैदा होते- हाफिज हलीम आज बड़े आदमी हो गए हैं, नहीं मेरे सामने जूते बेचते थे। लड़ाई में बन गए। अब रईसों के ठाठ हैं। सामने चला जाऊं तो पहचानेंगे नहीं। नहीं तो पैसे-धोले की मूली-तुरई उधार ले जाते थे। अल्लाह बड़ा कारसाज है। अब तो लड़का भी हाकिम हो गया है। क्या पूछना है-

जंगली घोसी पूरा काला देव था। शहर का मशहूर पहलवान। बोला-मैं तो पहले ही जानता था, कुछ होना-हवाना नहीं है। अमीरों के सामने हमें कौन पूछता है-

अमीर बेग पतली, लंबी गरदन निकालकर बोला-बोर्ड के फैसले की अपील तो कहीं होती होगी- हाईकोर्ट में अपील करनी चाहिए। हाईकोर्ट न सुने, तो बादशाह से फरियाद की जाय।

सुखदा ने मुस्कराकर कहा-बोर्ड के फैसले की अपील वही है, जो इस वक्त तुम्हारे सामने हो रही है। आप ही लोग हाईकोर्ट हैं, आप ही लोग जज हैं। बोर्ड अमीरों का मुंह देखता है। गरीबों के मुहल्ले खोद-खोदकर फेंक दिए जाते हैं, इसलिए कि अमीरों के महल बनें। गरीबों को दस-पांच रुपये मुआवजा देकर उसी जमीन के हजारों वसूल किए जाते हैं। उन रुपयों से अफसरों को बड़ी-बड़ी तनख्वाह दी जाती हैं। जिस जमीन पर हमारा दावा था, वह लाला धानीराम को दे दी गई। वहां उनके बंगले बनेंगे। बोर्ड को रुपये से प्यार है, तुम्हारी जान की उनकी निगाह में कोई कीमत नहीं। इन स्वार्थियों से इंसान की आशा छोड़ दो। तुम्हारे पास इतनी शक्ति है, उसका उन्हें खयाल नहीं है। वे समझते हैं, यह गरीब लोग हमारा कर ही क्या सकते हैं- मैं कहती हूं, तुम्हारे ही हाथों में सब कुछ है। हमें लड़ाई नहीं करनी है, फसाद नहीं करना है। सिर्फ हड़ताल करना है, यह दिखाने के लिए कि तुमने बोर्ड के फैसले को मजूर नहीं किया और यह हड़ताल एक-दो दिन की नहीं होगी। यह उस वक्त तक रहेगी जब तक बोर्ड अपना फैसला रद्द करके हमें जमीन न दे दे। मैं जानती हूं, ऐसी हड़ताल करना आसान नहीं है। आप लोगों में बहुत ऐसे हैं, जिनके घर में एक दिन का भी भोजन नहीं है मगर वह भी जानती हूं कि बिना तकलीफ उठाए आराम नहीं मिलता।

सुमेर की जूते की दूकान थी। तीन-चार चमार नौकर थे। खुद जूते काट दिया करता था। मजूर से पूंजीपति बन गया था। घास वालों और साईसों को सूद पर रुपये भी उधार दिया करता था। मोटी ऐनकों के पीछे से बिज्जू की भांति ताकता हुआ बोला-हड़ताल होना तो हमारी बिरादरी में मुश्किल है, बहूजी यों आपका गुलाम हूं और जानता हूं कि आप जो कुछ करेंगी, हमारी ही भलाई के लिए करेंगी पर हमारी बिरादरी में हड़ताल होना मुश्किल है। बेचारे दिन-भर घास काटते हैं, सांझ को बेचकर आटा-दाल जुटाते हैं, तब कहीं चूल्हा जलता है। कोई सहीस है, कोई कोचवान, बेचारों की नौकरी जाती रहेगी। अब तो सभी जाति वाले सहीसी, कोचवानी करते हैं। उनकी नौकरी दूसरे उठा लें, तो बेचारे कहाँ जाएंगे-

सुखदा विरोध सहन न कर सकती थी। इन कठिनाइयों का उसकी निगाह में कोई मूल्य न था। तिनककर बोली-तो क्या तुमने समझा था कि बिना कुछ किए-धारे अच्छे मकान रहने को मिल जाएंगे- संसार में जो अधिक से अधिक कष्ट सह सकता है, उसी की विजय होती है।

मतई जमादार ने कहा-हड़ताल से नुकसान तो सभी का होगा, क्या तुम हुए, क्या हम हुए लेकिन बिना धुएं के आग नहीं जलती। बहूजी के सामने हम लोगों ने कुछ न किया, तो समझ लो, जन्म-भर ठोकर खानी पड़ेगी। फिर ऐसा कौन है, जो हम गरीबों का दुख-दर्द समझेगा। जो कहो नौकरी चली जाएगी, तो नौकर तो हम सभी हैं। कोई सरकार का

नौकर है, कोई रईस का नौकर है। हमको यहां कौल-कसम भी कर लेनी होगी कि जब तक हड़ताल रहे, कोई किसी की जगह पर न जाय, चाहे भूखों मर भले ही जाएं।

सुमेर ने मतई को झिड़क दिया-तुम जमादार, बात समझते नहीं, बीच में कूद पड़ते हो। तुम्हारी और बात है, हमारी और बात है। हमारा काम सभी करते हैं, तुम्हारा काम और कोई नहीं कर सकता।

मैकू ने सुमेर का समर्थन किया-यह तुमने बहुत ठीक कहा, सुमेर चौधरी हमीं को देखो। अब पढ़े-लिखे आदमी धुलाई का काम करने लगे हैं। जगह-जगह कंपनी खुल गई हैं। ग्राहक के यहां पहुंचने में एक दिन की भी देर हो जाती है, तो वह कपड़े कंपनी भेज देता है। हमारे हाथ से ग्राहक निकल जाता है। हड़ताल दस-पांच दिन चली, तो हमारा रोजगार मिट्टी में मिल जाएगा। अभी पेट की रोटियां तो मिल जाती हैं। तब तो रोटियों के लाले पड़ जाएंगे।

मुरली खटीक ने ललकारकर कहा-जब कुछ करने का बूता नहीं तो लड़ने किस बिरते पर चले थे-क्या समझते थे, रो देने से दूध मिल जाएगा-वह जमाना अब नहीं है। अगर अपना और बाल-बच्चों का सुख देखना चाहते हो, तो सब तरह की आफत-बला सिर पर लेनी पड़ेगी। नहीं जाकर घर में आराम से बैठो और मक्खियों की तरह मरो।

ईदू ने धार्मिक गंभीरता से कहा-होगा, वही जो मुझ पर में है। हाय-हाय करने से कुछ होने को नहीं। हाफिज हलीम तकदीर ही से बड़े आदमी हो गए। अल्लाह की रजा होगी, तो मकान बनते देर न लगेगी।

जंगली ने इसका समर्थन किया-बस, तुमने लाख रुपये की बात कह दी, ईदू मियां हमारा दूध का सौदा ठहरा। एक दिन दूध न पहुंचे या देर हो जाय, तो लोग घुड़कियां जमाने लगते हैं-हम डेरी से दूध लेंगे, तुम बहुत देर करते हो। हड़ताल दस-पांच दिन चल गई, तो हमारा तो दिवाला निकल जाएगा। दूध तो ऐसी चीज नहीं कि आज न बिके, कल बिक जाय।

ईदू बोला-वही हाल तो साफ-पात का भी है भाई, फिर बरसात के दिन हैं, सुबू की चीज शाम को सड़ जाती है, और कोई सेंट में भी नहीं पूछता।

अमीरबेग ने अपनी सारस की-सी गर्दन उठाई-बहूजी, मैं तो कोई कायदा-कानून नहीं जानता मगर इतना जानता हूं, कि बादशाह रैयत के साथ इंसानफ जरूर करते हैं। रातों को भेस बदलकर रैयत का हाल-चाल जानने के लिए निकलते हैं, अगर ऐसी अरजी तैयार की जाय जिस पर हम सबके दसखत हों और बादशाह के सामने पेश की जाय, तो उस पर जरूर लिहाज किया जाएगा।

सुखदा ने जगन्नाथ की ओर आशा-भरी आंखों से देखकर कहा-तुम क्या कहते हो जगन्नाथ, इन लोगों ने तो जवाब दे दिया-

जगन्नाथ ने बगलें झांकते हुए कहा-तो बहूजी, अकेला चना तो भाड़ नहीं फोड़ सकता। अगर सब भाई साथ दें तो मैं तैयार हूं। हमारी बिरादरी का आधार नौकरी है। कुछ लोग खोंचे लगाते हैं, कोई डोली ढोता है पर बहुत करके लोग बड़े आदमियों की सेवा-टहल करते हैं। दो-चार दिन बड़े घरों की औरतें भी घर का काम-काज कर लेंगी। हम लोगों का तो सत्यानाश ही हो जाएगा।

सुखदा ने उसकी ओर से मुंह फेर लिया और मतई से बोली-तुम क्या कहते हो, क्या तुमने भी हिम्मत छोड़ दी-

मतई ने छाती ठोकर कहा-बात कहकर निकल जाना पाजियों का काम है, सरकार आपका जो हुक्म होगा, उससे

बाहर नहीं जा सकता। चाहे जान रहे या जाए। बिरादरी पर भगवान् की दया से इतनी धाक है कि जो बात मैं कहूंगा, उसे कोई दुलक नहीं सकता।

सुखदा ने निश्चय-भाव से कहा-अच्छी बात है, कल से तुम अपनी बिरादरी की हड़ताल करवा दो। और चौधरी लोग जाएं। मैं खुद घर-घर घूमूंगी, द्वार-द्वार जाऊंगी, एक-एक के पैर पड़ूंगी और हड़ताल कराके छोड़ूंगी और हड़ताल न हुई, तो मुंह में कालिख लगाकर डूब मरूंगी। मुझे तुम लोगों से बड़ी आशा थी, तुम्हारा बड़ा जोर था, अभिमान था। तुमने मेरा अभिमान तोड़ दिया।

यह कहती हुई वह ठाकुरद्वारे से निकलकर पानी में भीगती हुई चली गई। मतई भी उसके पीछे-पीछे चला गया। और चौधरी लोग अपनी अपराधी सूरतें लिए बैठे रहे।

एक क्षण के बाद जगन्नाथ बोला-बहूजी ने शेर कलेजा पाया है।

सुमेर ने पोपला मुंह चबलाकर कहा-लक्ष्मी की औतार है। लेकिन भाई, रोजगार तो नहीं छोड़ा जाता। हाकिमों की कौन चलाए, दस दिन, पंद्रह दिन न सुनें तो यहां तो मर मिटेंगे।

ईदू को दूर की सूझी-मर नहीं मिटेंगे पंचो, चौधरियों को जेहल में तूस दिया जाएगा। हो किस फेर में- हाकिमों से लड़ना ठड़ा नहीं।

जंगली ने हामी भरी-हम क्या खाकर रईसों से लड़ेंगे- बहूजी के पास धन है, इलम है, वह अफसरों से दो-दो बातें कर सकती हैं। हर तरह का नुकसान सह सकती हैं। हमार तो बधिया बैठ जाएगी।

किंतु सभी मन में लज्जित थे, जैसे मैदान से भागा सिपाही। उसे अपने प्राणों के बचाने का जितना आनंद होता है, उससे कहीं ज्यादा भागने की लज्जा होती है। वह अपनी नीति का समर्थन मुंह से चाहे कर ले, हृदय से नहीं कर सकता।

जरा देर में पानी रुक गया और यह लोग भी यहां से चले लेकिन उनके उदास चेहरों में, उनकी मंद चाल में, उनके झुके हुए सिरों में, उनके चिंतामय मौन में, उनके मन के भाव साफ झलक रहे थे।

सुखदा घर पहुंची, तो बहुत उदास थी। सार्वजनिक जीवन में हार उसे यह पहला अनुभव था और उसका मन किसी चाबुक खाए हुए अल्हड़ बछेड़े की तरह सारा साज और बम और बंधन तोड़-ताड़कर भाग जाने के लिए व्यग्र हो रहा था। ऐसे कायरों से क्या आशा की जा सकती है जो लोग स्थायी लाभ के लिए थोड़े-से कष्ट नहीं उठा सकते, उनके लिए संसार में अपमान और दुःख के सिवा और क्या है-

नैना मन में इस हार पर खुश थी। अपने घर में उसकी कुछ पूछ न थी, उसे अब तक अपमान-ही-अपमान मिला था, फिर भी उसका भविष्य उसी घर से संबं हो गया था। अपनी आंखें दुखती हैं, तो फोड़ नहीं दी जातीं। सेठ धानीराम ने जमीन हजारों में खरीदी थी, थोड़े ही दिनों में उनके लाखों में बिकने की आशा थी। वह सुखदा से कुछ कह तो न सकती थी पर यह आंदोलन उसे बुरा मालूम होता था। सुखदा के प्रति अब उसको वह भक्ति न रही थी। अपनी द्वेष-तृष्णा शांत करने ही के लिए तो वह आग लगा रही है इन तुच्छ भावनाओं से दबकर सुखदा उसकी आंखों में कुछ संकुचित हो गई थी।

नैना ने आलोचक बनकर कहा-अगर यहां के आदमियों को संगठित कर लेना इतना आसान होता, तो आज यह

दुर्दशा ही क्यों होती-

सुखदा आवेश में बोली-हड़ताल तो होगी, चाहे चौधरी लोग मानें या न मानें। चौधरी मोटे हो गए हैं और मोटे आदमी स्वार्थी हो जाते हैं।

नैना ने आपत्ति की-डरना मनुष्य के लिए स्वाभाविक है। जिसमें पुरुषार्थ है, ज्ञान है, बल है, वह बाधाओं को तुच्छ समझ सकता है। जिसके पास व्यंजनों से भरा हुआ थाल है, वह एक टुकड़ा कुत्ते के सामने फेंक सकता है, जिसके पास एक ही टुकड़ा हो वह उसी से चिमटेगा।

सुखदा ने मानो इस कथन को सुना ही नहीं-मंदिर वाले झगड़े में न जाने सभी में कैसे साहस आ गया था। मैं एक बार वही कांड दिखा देना चाहती हूं।

नैना ने कांपकर कहा-नहीं भाभी, इतना बड़ा भार सिर पर मत लो। समय आ जाने पर सब-कुछ आप ही हो जाता है। देखो, हम लोगों के देखते-देखते बाल-विवाह, छूत-छात का रिवाज कम हो गया। शिक्षा का प्रचार कितना बढ़ गया। समय आ जाने पर गरीबों के घर भी बन जाएंगे।

'यह तो कायरों की नीति है। पुरुषार्थ वह है, जो समय को अपने अनुकूल बनाए।'

'इसके लिए प्रचार करना चाहिए।'

'छः महीने वाली राह है।'

'लेकिन जोखिम तो नहीं है।'

'जनता को मुझ पर विश्वास नहीं है।'

एक क्षण बाद उसने फिर कहा-अभी मैंने ऐसी कौन-सी सेवा की है कि लोगों को मुझ पर विश्वास हो। दो-चार घंटे गलियों में चक्कर लगा लेना कोई सेवा नहीं है।

'मैं तो समझती हूं, इस समय हड़ताल कराने से जनता की थोड़ी बहुत सहानुभूति जो है, वह भी गायब हो जाएगी।'

सुखदा ने अपनी जांघ पर हाथ पटककर कहा-सहानुभूति से काम चलता, तो फिर रोना किस बात का था- लोग स्वेच्छा से नीति पर चलते, तो कानून क्यों बनाने पड़ते- मैं इस घर में रहकर और अमीर का ठाट रखकर जनता के दिलों पर काबू नहीं पा सकती। मुझे त्याग करना पड़ेगा। इतने दिनों से सोचती ही रह गई।

दूसरे दिन शहर में अच्छी-खासी हड़ताल थी। मेहतर तो एक भी काम करता न नजर आता था। कहारों और इक्के-गाड़ी वालों ने भी काम बंद कर दिया था। साफ-भाजी की दूकानें भी आधी से ज्यादा बंद थीं। कितने ही घरों में दूध के लिए हाय-हाय मची हुई थी। पुलिस दूकानें खुलवा रही थी और मेहतारों को काम पर लाने की चेष्टा कर रही थी। उधर जिले के अधिकारी मंडल में इस समस्या को हल करने का विचार हो रहा था। शहर के रईस और अमीर भी उसमें शामिल थे।

दोपहर का समय था। घटा उमड़ी चली आती थी, जैसे आकाश पर पीला लेप किया जा रहा हो। सड़कों और गलियों में जगह-जगह पानी जमा था। उसी कीचड़ में जनता इधर-उधर दौड़ती फिरती थी। सुखदा के द्वार पर एक भीड़ लगी हुई थी कि सहसा शान्तिकुमार घुटने तक कीचड़ लपेटे आकर बरामदे में खड़े हो गए। कल की बातों के बाद आज

वहां आते उन्हें संकोच हो रहा था। नैना ने उन्हें देखा पर अंदर न बुलाया सुखदा अपनी माता से बातें कर रही थी। शान्तिकुमार एक क्षण खड़े रहे, फिर हताश होकर चलने को तैयार हुए।

सुखदा ने उनकी रोनी सूरत देखी, फिर भी उन पर व्यंग्य-प्रहार करने से न चूकी- किसी ने आपको यहां आते देख तो नहीं लिया, डॉक्टर साहब-

शान्तिकुमार ने इस व्यंग्य की चोट को विनोद से रोका-खूब देख-भालकर आया हूं। कोई यहां देख भी लेगा, तो कह दूंगा, रुपये उधार लेने आया हूं।

रेणुका ने डॉक्टर साहब से देवर का नाता जोड़ लिया था। आज सुखदा ने कल का वृत्तांत सुनाकर उसे डॉक्टर साहब को आड़े हाथों लेने की सामग्री दे दी थी, हालांकि अदृश्य रूप से डॉक्टर साहब के नीति-भेद का कारण वह खुद थीं। उन्होंने ने ट्रस्ट का भार उनके सिर पर रखकर उन्हें संचित कर दिया था।

उसने डॉक्टर का हाथ पकड़कर कुर्सी पर बैठाते हुए कहा-तो चूड़ियां पहनकर बैठो ना, यह मूंछें क्यों बढ़ा ली हैं-

शान्तिकुमार ने हंसते हुए कहा-मैं तैयार हूं, लेकिन मुझसे शादी करने के लिए तैयार रहिएगा। आपको मर्द बनना पड़ेगा।

रेणुका ताली बजाकर बोली-मैं तो बूढ़ी हुई लेकिन तुम्हारा खसम ऐसा दूंदूंगी जो तुम्हें सात परदों के अंदर रखे और गालियों से बात करे। गहने मैं बनवा दूंगी। सिर में सिंदूर डालकर घूंघट निकाले रहना। पहले खसम खा लेगा, तो उसका जूठन मिलेगा, समझ गए, और उसे देवता का प्रसाद समझ कर खाना पड़ेगा। जरा भी नाक-भौं सिकोड़ी, तो कुलच्छनी कहलाओगे। उसके पांव दबाने पड़ेंगे, उसकी धोती छांटनी पड़ेगी। वह बाहर से आएगा तो उसके पांव धोने पड़ेंगे, और बच्चे भी जनने पड़ेंगे। बच्चे न हुए, तो वह दूसरा ब्याह कर लेगा फिर घर में लौंडी बनकर रहना पड़ेगा।

शान्तिकुमार पर लगातार इतनी चोटें पड़ीं कि हंसी भूल गई। मुंह जरा-सा निकल आया। मुर्दनी ऐसी छा गई जैसे मुंह बंध गया। जबड़े फैलाने से भी न फैलते थे। रेणुका ने उनकी दो-चार बार पहले भी हंसी की थी पर आज तो उन्हें रूलाकर छोड़ा। परिहास में औरत अजेय होती है, खासकर जब वह बूढ़ी हो।

उन्होंने घड़ी देखकर कहा-एक बज रहा है। आज तो हड़ताल अच्छी तरह रही।

रेणुका ने फिर चुटकी ली-आप तो घर में लेटे थे, आपको क्या खबर-

शान्तिकुमार ने अपनी कारगुजारी जताई-उन आराम से लेटने वालों में मैं नहीं हूं। हरेक आंदोलन में ऐसे आदमियों की भी जरूरत होती है, जो गुप्त रूप से उसकी मदद करते रहें। मैंने अपनी नीति बदल दी है और मुझे अनुभव हो रहा है कि इस तरह कुछ कम सेवा नहीं कर सकता। आज नौजवान-सभा के दस-बारह युवकों को तैनात कर आया हूं, नहीं इसकी चौथाई हड़ताल भी न होती।

रेणुका ने बेटी की पीठ पर एक थपकी देकर कहा-जब तू इन्हें क्यों बदनाम कर रही थी- बेचारे ने इतनी जान खपाई, फिर भी बदनाम हुए। मेरी समझ में भी यह नीति आ रही है। सबका आग में कूदना अच्छा नहीं।

शान्तिकुमार कल के कार्यक्रम का निश्चय करके और सुखदा को अपनी ओर से आश्वस्त करके चले गए।

संध्या हो गई थी। बादल खुल गए थे और चांद की सुनहरी जोत पृथ्वी के आंसुओं से भीगे हुए मुख पर मातृ-स्नेह की

वर्षा कर रही थी। सुखदा संध्या करने बैठी हुई थी। उस गहरे आत्म-चिंतन में उसके मन की दुर्बलता किसी हठीले बालक की भांति रोती हुई मालूम हुई। मनीराम ने उसका वह अपमान न किया होता, तो वह हड़ताल के लिए क्या इतना जोर लगाती-

उसके अभिमान ने कहा-हां-हां, जरूर लगाती। यह विचार बहुत पहले उसके मन में आया था। धानीराम को हानि होती है, तो हो, इस भय से वहाँ कर्तव्य का त्याग क्यों करे- जब वह अपना सर्वस्व इस उद्योग के लिए होम करने को तुली हुई है, तो दूसरों के हानि-लाभ की क्या चिंता हो सकती है-

इस तरह मन को समझाकर उसने संसंध्या समाप्त की और नीचे उतरी ही थी कि लाला समरकान्त आकर खड़े हो गए। उनके मुख पर विषाद की रेखा झलक रही थी और होंठ इस तरह गड़क रहे थे, मानो मन का आवेश बाहर निकलने के लिए विकल हो रहा हो।

सुखदा ने पूछा-आप कुछ घबराए हुए हैं दादाजी, क्या बात है-

समरकान्त की सारी देह कांप उठी। आंसुओं के वेग को बलपूर्वक रोकने की चेष्टा करके बोले-एक पुलिस कर्मचारी अभी दूकान पर ऐसी सूचना दे गया है कि क्या कहूं।

यह कहते-कहते उनका कंठ-स्वर जैसे गहरे जल में डुबकियां खाने लगा।

सुखदा ने आशंकित होकर पूछा-तो कहिए न, क्या कह गया है- हरिद्वार में तो सब कुशल है-

समरकान्त ने उसकी आशंकाओं को दूसरी ओर बहकते देख जल्दी से कहा-नहीं-नहीं, उधर की कोई बात नहीं है। तुम्हारे विषय में था। तुम्हारी गिरफ्तारी का वारंट निकल गया है।

सुखदा ने हंसकर कहा-अच्छा मेरी गिरफ्तारी का वारंट है तो उसके लिए आप इतना क्यों घबरा रहे हैं- मगर आखिर मेरा अपराध क्या है-

समरकान्त ने मन को संभालकर कहा-यही हड़ताल है। आज अफसरों में सलाह हुई है। और वहां यही निश्चय हुआ कि तुम्हें और चौधरियों को पकड़ लिया जाय। इनके पास दमन ही एक दवा है। असंतोष के कारणों को दूर न करेंगे, बस, पकड़-धकड़ से काम लेंगे, जैसे कोई माता भूख से रोते बालक को पीटकर चुप कराना चाहे।

सुखदा शांत भाव से बोली-जिस समाज का आधार ही अन्याय पर हो, उसकी सरकार के पास दमन के सिवा और क्या दवा हो सकती है- लेकिन इससे कोई यह न समझे कि यह आंदोलन दब जाएगा, उसी तरह, जैसे कोई गेंद टक्कर खाकर और जोर से उछलती है, जितने ही जोर की टक्कर होगी, उतने ही जोर की प्रतिक्रिया भी होगी।

एक क्षण के बाद उसने उत्तेजित होकर कहा-मुझे गिरफ्तार कर लें। उन लाखों गरीबों को कहां ले जाएंगे, जिनकी आहें आसमान तक पहुंच रही हैं। यही आहें एक दिन किसी ज्वालामुखी की भांति फटकर सारे समाज और समाज के साथ सरकार को भी विध्वंस कर देंगी अगर किसी की आंखें नहीं खुलतीं, तो न खुलें। मैंने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया। एक दिन आएगा, जब आज के देवता कल कंकर-पत्थर की तरह उठा-उठाकर गलियों में फेंक दिए जाएंगे और पैरों से ठुकराए जाएंगे। मेरे गिरफ्तार हो जाने से चाहे कुछ दिनों के लिए

अधिकारियों के कानों में हाहाकार की आवाजें न पहुंचें लेकिन वह दिन दूर नहीं है, जब यही आंसू चिंगारी बनकर अन्याय को भस्म कर देंगे। इसी राख से वह अग्नि प्रज्वलित होगी, जिसकी आंदोलन शाखाएं आकाश तक को हिला

देगी।

समरकान्त पर इस प्रलाप का कोई असर न हुआ। वह इस संकट को टालने का उपाय सोच रहे थे। डरते-डरते बोले- एक बात कहूं, बुरा न मानो। जमानत...

सुखदा ने तयोरियां बदलकर कहा-नहीं, कदापि नहीं। मैं क्यों जमानत दूं- क्या इसलिए कि अब मैं कभी जबान न खोलूंगी, अपनी आंखों पर पट्टी बंध लूंगी, अपने मुंह पर जाली लगा लूंगी- इससे तो यह कहीं अच्छा है कि अपनी आंखें फोड़ लूं, जबान कटवा दूं।

समरकान्त की सहिष्णुता अब सीमा तक पहुंच चुकी थी गरजकर बोले-अगर तुम्हारी जबान काबू में नहीं है, तो कटवा लो। मैं अपने जीते-जी यह नहीं देख सकता कि मेरी बहू गिरफ्तार की जाए और मैं बैठा देखूं। तुमने हड़ताल करने के लिए मुझसे पूछ क्यों न लिया- तुम्हें अपने नाम की लाज न हो, मुझे तो है। मैंने जिस मर्यादा-रक्षा के लिए अपने बेटे को त्याग दिया, उस मर्यादा को मैं तुम्हारे हाथों न मिटने दूंगा।

बाहर से मोटर का हार्न सुनाई दिया। सुखदा के कान खड़े हो गए। वह आवेश में द्वार की ओर चली। फिर दौड़कर मुन्ने को नैना की गोद से लेकर उसे हृदय से लगाए हुए अपने कमरे में जाकर अपने आभूषण उतारने लगी। समरकान्त का सारा क्रोध कच्चे रंग की भांति पानी पड़ते ही उड़ गया। लपककर बाहर गए और आकर घबराए हुए बोले-बहू, डिप्टी आ गया। मैं जमानत देने जा रहा हूं। मेरी इतनी याचना स्वीकार करो। थोड़े दिनों का मेहमान हूं। मुझे मर जाने दो फिर जो कुछ जी में आए करना।

सुखदा कमरे के द्वार पर आकर दृढ़ता से बोली-मैं जमानत न दूंगी, न इस मुआमले की पैरवी करूंगी। मैंने कोई अपराध नहीं किया है।

समरकान्त ने जीवन भर में कभी हार न मानी थी पर आज वह इस अभिमानिनी रमणी के सामने परास्त खड़े थे। उसके शब्दों ने जैसे उनके मुंह पर जाली लगा दी। उन्होंने सोचा-स्त्रियों को संसार अबला कहता है। कितनी बड़ी मूर्खता है। मनुष्य जिस वस्तु को प्राणों से भी प्रिय समझता है, वह स्त्री की मुट्ठी में है।

उन्होंने विनय के साथ कहा-लेकिन अभी तुमने भोजन भी तो नहीं किया। खड़ी मुंह क्या ताकती है नैना, क्या भंग खा गई है जा, बहू को खाना खिला दे। अरे ओ महाराज। महारा। यह ससुरा न जाने कहां मर रहा- समय पर एक भी आदमी नजर नहीं आता। तू बहू को ले जा रसोई में नैना, मैं कुछ मिठाई लेता आऊं। साथ-साथ कुछ खाने को तो ले जाना ही पड़ेगा।

कहार ऊपर बिछावन लगा रहा था। दौड़ा हुआ आकर खड़ा हो गया। समरकान्त ने उसे जोर से एक धौल मारकर कहा-कहां था तू- इतनी देर से पुकार रहा हूं, सुनता नहीं किसके लिए बिछावन लगा रहा है, ससुर बहू जा रही है। जा दौड़कर बाजार से मिठाई ला। चौक वाली दुकान से लाना।

सुखदा आग्रह के साथ बोली-मिठाई की मुझे बिल्कुल जरूरत नहीं है और न कुछ खाने की ही इच्छा है। कुछ कपड़े लिए जाती हूं, वही मेरे लिए काफी हैं।

बाहर से आवाज आई-सेठजी, देवीजी को जल्दी भेजिए, देर हो रही है।

समरकान्त बाहर आए और अपराधी की भांति खड़े गए।

डिप्टी दुहरे बदन का, रोबदार, पर हंसमुख आदमी था, जो और किसी विभाग में अच्छी जगह न पाने के कारण पुलिस में चला आया था। अनावश्यक अशिष्टता से उसे घृणा थी और यथासाध्य रिश्त न लेता था। पूछा-कहिए क्या राय हुई-

समरकान्त ने हाथ बंधकर कहा-कुछ नहीं सुनती हुजूर, समझाकर हार गया। और मैं उसे क्या समझाऊं- मुझे वह समझती ही क्या है- अब तो आप लोगों की दया का भरोसा है। मुझसे जो खिदमत कहिए, उसके लिए हाजिर हूं। जेलर साहब से तो आपका रब्त-जब्त होगा ही, उन्हें भी समझा दीजिएगा। कोई तकलीफ न होने पावे। मैं किसी तरह भी बाहर नहीं हूं। नाजुक मिजाज औरत है, हुजूर।

डिप्टी ने सेठजी को बराबर की कुर्सी पर बैठाकर कहा-सेठजी, यह बातें उन मुआमलों में चलती हैं जहां कोई काम बुरी नीयत से किया जाता है। देवीजी अपने लिए कुछ नहीं कर रही हैं। उनका इरादा नेक है वह हमारे गरीब भाइयों के हक के लिए लड़ रही हैं। उन्हें किसी तरह की तकलीफ न होगी। नौकरी से मजबूर हूं वरना यह देवियां तो इस लायक हैं कि इनके कदमों पर सिर रखें। खुदा ने सारी दुनिया की नेमतें दे रखी हैं मगर उन सब पर लात मार दी और हक के लिए सब कुछ झेलने को तैयार हैं। इसके लिए गुर्दा चाहिए साहब, मामूली बात नहीं है।

सेठजी ने संदूक से दस अशर्फियां निकालीं और चुपके से डिप्टी की जेब में डालते हुए बोले-यह बच्चों के मिठाई खाने के लिए हैं।

डिप्टी ने अशर्फियां जेब से निकालकर मेज पर रख दीं और बोला-आप पुलिस वालों को बिलकुल जानवर ही समझते हैं क्या, सेठजी- क्या लाल पगड़ी सिर पर रखना ही इंसानियत का खून करना है- मैं आपको यकीन दिलाता हूं कि देवीजी को तकलीफ न होने पाएगी। तकलीफ उन्हें दी जाती है जो दूसरों को तकलीफ देते हैं। जो गरीबों के हक के लिए अपनी जिंदगी कुरबान कर दे, उसे अगर कोई सताए, तो वह इंसान नहीं, हैवान भी नहीं, शैतान है। हमारे सींगे में ऐसे आदमी हैं और कसरत से हैं। मैं खुद फरिश्ता नहीं हूं लेकिन ऐसे मुआमले में मैं पान तक खाना हराम समझता हूं। मंदिर वाले मुआमले में देवीजी जिस दिलेरी से मैदान में आकर गोलियों के सामने खड़ी हो गई थीं, वह उन्हीं का काम था।

सामने सड़क पर जनता का समूह प्रतीक्षण बढ़ता जाता था। बार-बार जय-जयकार की ध्वनि उठ रही थी। स्त्री और पुरुष देवीजी के दर्शन को भागे चले आते थे।

भीतर नैना और सुखदा में समर छिड़ा हुआ था।

सुखदा ने थाली सामने से हटाकर कहा-मैंने कह दिया, मैं कुछ न खाऊंगी।

नैना ने उसका हाथ पकड़कर कहा-दो-चार कौर ही खा लो भाभी, तुम्हारे पैरों पड़ती हूं। फिर न जाने यह दिन कब आए-

उसकी आंखें सजल हो गईं।

सुखदा निष्ठुरता से बोली-तुम मुझे व्यर्थ में दिक कर रही हो बीबी, मुझे अभी बहुत- सी तैयारियां करनी हैं और उधर डिप्टी जल्दी मचा रहा है। देखती नहीं हो, द्वार पर डोली खड़ी है। इस वक्त खाने की किसे सूझती है-

नैना प्रेम-विह्वल कंठ से बोली-तुम अपना काम करती रहो, मैं तुम्हें कौर बनाकर खिलाती जाऊंगी।

जैसे माता खेलते बच्चे के पीछे दौड़-दौड़कर उसे खिलाती है, उसी तरह नैना भाभी को खिलाने लगी। सुखदा कभी इस अलमारी के पास जाती, कभी उस संदूक के पास। किसी संदूक से सिंदूर की डिबिया निकालती, किसी से साड़ियां। नैना एक कौर खिलाकर फिर थाल के पास जाती और दूसरा कौर लेकर दौड़ती।

सुखदा ने पांच-छः कौर खाकर कहा-बस, अब पानी पिला दो।

नैना ने उसके मुंह के पास कौर ले जाकर कहा-बस यही कौर ले लो, मेरी अच्छी भाभी।

सुखदा ने मुंह खोल दिया और ग्रास के साथ आंसू भी पी गई।

'बस एक और।'

'अब एक कौर भी नहीं।'

'मेरी खातिर से।'

सुखदा ने ग्रास ले लिया।

'पानी भी दोगी या खिलाती ही जाओगी।'

'बस, एक ग्रास भैया के नाम का और ले लो।'

'ना। किसी तरह नहीं।'

नैना की आंखों में आंसू थे प्रत्यक्ष, सुखदा की आंखों में भी आंसू थे मगर छिपे हुए। नैना शोक से विह्वल थी, सुखदा उसे मनोबल से दबाए हुए थी। वह एक बार निष्ठुर बनकर चलते-चलते नैना के मोह-बंधन को तोड़ देना चाहती थी, पैसे शब्दों से हृदय के चारों ओर खाई खोद देना चाहती थी, मोह और शोक और वियोग-व्यथा के आक्रमणों से उसकी रक्षा करने के लिए पर नैना की छलछलाती हुई आंखें, वह कांपते हुए होंठ, वह विनय-दीन मुखश्री उसे निःशस्त्र किए देती थी।

नैना ने जल्दी-जल्दी पान के बीड़े लगाए और भाभी को खिलाने लगी, तो उसके दबे हुए आंसू गव्वारे की तरह उबल पड़े। मुंह ढांपकर रोने लगी। सिसकियां और गहरी होकर कंठ तक जा पहुंचीं।

सुखदा ने उसे गले से लगाकर सजल शब्दों में कहा-क्यों रोती हो बीबी, बीच-बीच में मुलाकात तो होती ही रहेगी। जेल में मुझसे मिलने आना, तो खूब अच्छी-अच्छी चीजें बनाकर लाना। दो-चार महीने में तो मैं फिर आ जाऊंगी।

नैना ने जैसे डूबती हुई नाव पर से कहा-मैं ऐसी अभागिन हूं कि आप तो डूबी ही थीं, तुम्हें भी ले डूबी।

ये शब्द फोड़े। की तरह उसी समय से उसके हृदय में टीस रहे थे, जब से उसने सुखदा की गिरफ्तारी की खबर सुनी थी, और यह टीस उसकी मोह-वेदना को और भी दुदाऊत बना रही थी।

सुखदा ने आश्चर्य से उसके मुंह की ओर देखकर कहा-यह तुम क्या कह रही हो बीबी, क्या तुमने पुलिस बुलाई है-

नैना ने ग्लानि से भरे कंठ से कहा-यह पत्थर की हवेली वालों का कुचक्र है (सेठ धानीराम शहर में इसी नाम से प्रसिद्ध हैं) किसी को गालियां नहीं देती पर उनका किया उनके आगे आएगा। जिस आदमी के लिए एक मुंह से भी आशीर्वाद न निकलता हो, उसका जीना वृथा है।

सुखदा ने उदास होकर कहा-उनका इसमें क्या दोष है, बीबी- यह सब हमारे समाज का, हम सबों का दोष है। अच्छा आओ, अब विदा हो जाएं। वादा करो, मेरे जाने पर रोओगी नहीं।

नैना ने उसके गले से लिपटकर सूजी हुई आंखों से मुस्कराकर कहा-नहीं रोऊंगी, भाभी।

'अगर मैंने सुना कि तुम रो रही हो, तो मैं अपनी सजा बढ़वा लूंगी।'

'भैया को यह समाचार देना ही होगा।'

'तुम्हारी जैसी इच्छा हो करना। अम्मां को समझाती रहना।'

'उनके पास कोई आदमी भेजा गया या नहीं?'

'उन्हें बुलाने से और देर ही तो होती। घंटों न छोड़तीं।'

'सुनकर दौड़ी आएंगी।'

'हां, आएंगी तो पर रोएंगी नहीं। उनका प्रेम आंखों में है। हृदय तक उसकी जड़ नहीं पहुंचती।'

दोनों द्वार की ओर चलीं। नैना ने मुन्ने को मां की गोद से उतारकर प्यार करना चाहा पर वह न उतरा। नैना से बहुत हिला था पर आज वह अबोध आंखों से देख रहा था-माता कहीं जा रही है। उसकी गोद से कैसे उतरे- उसे छोड़कर वह चली जाए, तो बेचारा क्या कर लेगा-

नैना ने उसका चुंबन लेकर कहा-बालक बड़े निर्दयी होते हैं।

सुखदा ने मुस्कराकर कहा-लड़का किसका है।

द्वार पर पहुंचकर फिर दोनों गले मिलीं। समरकान्त भी डयोढ़ी पर खड़े थे। सुखदा ने उसके चरणों पर सिर झुकाया। उन्होंने कांपते हुए हाथों से उसे उठाकर आशीर्वाद दिया। फिर मुन्ने को कलेजे से लगाकर झुक-झुटकर रोने लगे। यह सारे घर को रोने का सिग्नल था। आंसू तो पहले ही से निकल रहे थे। वह मूक रूदन अब जैसे बंधनो से मुक्त हो गया। शीतल, धीर, गंभीर बुढ़ापा जब विह्वल हो जाता है, तो मानो पिंजरे के द्वार खुल जाते हैं और पक्षियों को रोकना असंभव हो जाता है। जब सत्तर वर्ष तक संसार के समर में जमा रहने वाला नायक हथियार डाल दे, तो रंगईटों को कौन रोक सकता है-

सुखदा मोटर में बैठी। जय-जयकार की ध्वनि हुई। फूलों की वर्षा की गई।

मोटर चल दी।

हजारों आदमी मोटर के पीछे दौड़ रहे थे और सुखदा हाथ उठाकर उन्हें प्रणाम करती जाती थी। यह श्रद्धा, यह प्रेम, यह सम्मान क्या धन से मिल सकता है- या विद्या से- इसका केवल एक ही साधन है, और वह सेवा है, और सुखदा को अभी इस क्षेत्र में आए हुए ही कितने दिन हुए थे-

सड़क के दोनों ओर नर-नारियों की दीवार खड़ी थी और मोटर मानो उनके हृदय को कुचलती-मसलती चली जा रही थी।

सुखदा के हृदय में गर्व न था, उल्लास न था, द्वेष न था, केवल वेदना थी। जनता की इस दयनीय दशा पर, इस

अधोगति पर, जो डूबती हुई दशा में तिनके का सहारा पाकर भी कृतार्थ हो जाती है।

कुछ देर के बाद सड़क पर सन्नाटा था, सावन की निद्रा-सी काली रात संसार को अपने अंचल में सुला रही थी और मोटर अनंत में स्वप्न की भांति उड़ी चली जाती थी। केवल देह में ठंडी हवा लगने से गति का ज्ञान होता था। इस अंधकार में सुखदा के अंतस्तल में एक प्रकाश-सा उदय हुआ था। कुछ वैसा ही प्रकाश, जो हमारे जीवन की अंतिम घड़ियों में उदय होता है, जिसमें मन की सारी कालिमाएं, सारी ग्रंथियां, सारी विषमताएं अपने यथार्थ रूप में नजर आने लगती हैं। तब हमें मालूम होता है कि जिसे हमने अंधकार में काला देव समझा था, वह केवल तृण का ढेर था। जिसे काला नाग समझा था, वह रस्सी का एक टुकड़ा था। आज उसे अपनी पराजय का ज्ञान हुआ, अन्याय के सामने नहीं असत्य के सामने नहीं, बल्कि त्याग के सामने और सेवा के सामने। इसी सेवा और त्याग के पीछे तो उसका पति से मतभेद हुआ था, जो अंत में इस वियोग का कारण हुआ। उन सिध्दांतों से अभक्ति रखते हुए भी वह उनकी ओर खिंचती चली आती थी और आज वह अपने पति की अनुगामिनी थी। उसे अमर के उस पत्र की याद आई, जो उसने शान्तिकुमार के पास भेजा था और पहली बार पति के प्रति क्षमा का भाव उसके मन में प्रस्फुटित हुआ। इस क्षमा में दया नहीं, सहानुभूति थी, सहयोगिता थी। अब दोनों एक ही मार्ग के पथिक हैं, एक ही आदर्श के उपासक हैं। उनमें कोई भेद नहीं है, कोई वैषम्य नहीं है। आज पहली बार उसका अपने पति से आत्मिक सामंजस्य हुआ। जिस देवता को अमंगलकारी समझ रखा था, उसी की आज धूप-दीप से पूजा कर रही थी।

सहसा मोटर रुकी और डिप्टी ने उतरकर कहा-देवीजी, जेल आ गया। मुझे क्षमा कीजिएगा।